विशेष लेख

भारत में उच्च शिक्षा में प्रवेश पर आरक्षण का प्रभाव

थॉमस ई. व्हाइसकॉफ़

उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश सम्बन्धी भारतीय आरक्षण नीतियों के परिणामों के अनुभवजन्य प्रमाण क्या हैं? उच्च शिक्षा के सभी स्तरों पर आरक्षण के कारण अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थी बड़ी संख्या में बेहतर विश्वविद्यालयों में पहुँचते हैं। इसके साथ ही अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के जो विद्यार्थी आरक्षण न होने की सूरत में विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा न लेते, वे भी काफी संख्या में विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने को प्रेरित होते हैं। आरक्षणों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की एक 'मलाईदार परत' को लाभ देने की प्रवृत्ति दिखने का यह मतलब नहीं है कि ये नीतियाँ अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रही हैं। इन नीतियों को बहुत ही वंचित और कम-प्रतिनिधित्व वाले समुदायों को अभिजात पेशों और निर्णय लेने की स्थिति में पहुँचा कर समाज के ऊपरी वर्ग के एकीकरण को बढ़ावा देने के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए।

भारत और अमेरिका जैसे जिन देशों में सकारात्मक विभेद की नीतियों का पालन किया जाता है, वहाँ ये एक विवादास्पद मुद्दा बनती चली गई हैं। ये नीतियाँ अपने समर्थकों और विरोधियों, दोनों को ही जबरदस्त ढंग से आवेश से भरती हैं, इन पर जितना विद्वतापूर्ण लेखन हुआ है उतना ही ध्रुवीकरण करने वाला लेखन भी हुआ है, ढेरों जीवन्त सार्वजनिक बहसें हुई हैं, बहुत से प्रदर्शन और अनेक मुकदमे हुए हैं। ये ऐसे सन्दर्भ हैं जिनसे ज्ञान या हल कम निकलते हैं लेकिन विवाद काफी पैदा होते हैं। मैं मानता हूँ कि सकारात्मक विभेद की नीतियों के परिणामों का सावधानी से किया गया अनुभवजन्य विश्लेषण इन नीतियों की वांछनीयता का अधिक तर्कसंगत मूल्यांकन उपलब्ध करवा सकता है।

इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली (व्हाइसकॉफ़, 2001) में छपे एक लेख में मैंने अमेरिका में उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश में सकारात्मक कार्रवाई के प्रभावों के मूल्यांकन पर हाल के अनुभवजन्य शोध की समीक्षा की थी - उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश उन बहुत महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है जिनमें अमेरिका में सकारात्मक विभेद की नीतियाँ लागू की गई हैं। मेरे इस लेख का उद्देश्य इसी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में भारतीय सकारात्मक विभेद की नीतियों के परिणामों पर

आनुभविक साक्ष्य का संकलन और विश्लेषण करना है। मैं पिछली आधी सदी में भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश पर आरक्षण नीतियों के सकारात्मक या नकारात्मक परिणामों के उपलब्ध साक्ष्यों की समीक्षा कर रहा हूँ। दुःख की बात है कि ये साक्ष्य सीमित हैं, विशेष रूप से दीर्घावधि परिणामों के लिए। फिर भी, पिछले तीन दशकों में, प्रासंगिक अध्ययनों में धीमे-धीमे वृद्धि हुई है, जो अब उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पर आरक्षण नीतियों के परिणामों पर प्रकाश डाल सकते हैं।

मैं खण्ड-1 की शुरुआत उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकित छात्रवर्ग सकारात्मक विभेद की नीतियों पर आरक्षण नीतियों के प्रभाव के साक्ष्य की जाँच से कर रहा हूँ। खण्ड-2 में, मैं ऐसे संस्थानों में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन से सम्बन्धित साक्ष्यों की जाँच करूँगा: आरक्षण नीतियों का लाभ पाने वाले कितनी अच्छी तरह पढ़ाई करते हैं? खण्ड-3 में, आरक्षण के दीर्घकालिक प्रभावों पर ध्यान दिया जा रहा है: विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करने के बाद आरक्षण नीतियों का लाभ पाने वालों का करियर कितना अच्छा रहा? आखिर में, खण्ड-4 में, मैं साक्ष्य का संक्षेप और भारतीय उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश पर आरक्षण नीतियों के परिणामों के बारे में कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

खण्ड-1. आरक्षण नीतियाँ और भारतीय विश्वविद्यालयों में नामांकन

उच्च शिक्षा में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग के नामांकन[1]

पिछली आधी सदी में भारतीय विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों में कुल नामांकन तेजी से बढ़े हैं; 1950 में जहाँ दो लाख से भी कम छात्र नामांकित थे, वहीं वर्ष 2000 तक इनकी संख्या लगभग सत्तर लाख तक पहुँच गई।[2] इस अवधि में कुल उच्च शैक्षिक नामांकन में अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के छात्रों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व धीरे-धीरे बढ़ता गया है। 1970 के दशक के उत्तरार्ध्द में अनुसूचित जातियों के छात्रों का अनुपात 7 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का अनुपात 1.6 प्रतिशत था। 1990 के दशक के अन्त तक अनुसूचित जातियों के छात्रों का अनुपात 7.8 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का अनुपात 2.7 प्रतिशत हो गया (राव 2002:47)। इन प्रतिशत आँकड़ों की तुलना, भारत की कुल आबादी में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की हिस्सेदारी से की जानी चाहिए: जो क्रमशः लगभग 16 प्रतिशत और 8 प्रतिशत है।[3] इस प्रकार, सदी के अन्त तक, उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित

जनजातियों के छात्रों का प्रतिनिधित्व पूरी आबादी में उनके प्रतिनिधित्व के क्रमशः लगभग आधे और एक तिहाई तक पहुँच गया था।[4]

भारतीय महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विभिन्न डिग्री कार्यक्रमों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का वितरण काफी असमान है (चानना 1993; एचआरडी 1997)। भारत में उच्च शिक्षा पाने वाले छात्रों में से लगभग 40 प्रतिशत कला पाठ्यक्रमों (जो अपेक्षाकृत कम प्रतिष्ठापूर्ण माने जाते हैं) में नामांकित होते हैं, लेकिन अनुसूचित जातियों के 60 प्रतिशत से अधिक और अनुसूचित जनजातियों के लगभग 75 प्रतिशत छात्र कला पाठ्यक्रमों में नामांकित हैं। सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित कार्यक्रमों जैसे– इंजीनियरिंग, कानून और चिकित्सा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन का प्रतिशत बाकी वर्गों के छात्रों से बहुत कम है। आश्चर्य की बात नहीं कि स्नातक स्तर की तुलना में स्नातकोत्तर और पीएचडी कार्यक्रमों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की संख्या और भी कम रहती है।

उच्च शिक्षा के संस्थानों से स्नातक हुए दलित और आदिवासी छात्रों की संख्या का साक्ष्य सीमित मात्रा में ही उपलब्ध है। मैंने जनगणना के आँकड़ों[5] से गणना की है कि भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों के सभी स्नातकों में अनुसूचित जातियों के छात्रों का अनुपात जो 1961 में 0.9 प्रतिशत था, 1981 में 3.3 प्रतिशत हो गया; इसी सन्दर्भ में अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का अनुपात जो 1961 में 0.1 प्रतिशत था, 1981 में 0.8 प्रतिशत हो गया। तब से, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का अनुपात निःसन्देह आगे बढ़ा है। लेकिन 1981 में सभी भारतीय स्नातकों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग के स्नातकों का प्रतिशत, जो क्रमशः केवल 3 और 1 प्रतिशत था, भारतीय आबादी में उनकी हिस्सेदारी के अनुपात से काफी कम है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन पर आरक्षण नीतियों का प्रभाव

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन का श्रेय बहुत हद तक भारत की आरक्षण नीतियों को दिया जा सकता है। लेकिन, यह अनुमान लगाना बहुत मुश्किल है कि इन नीतियों से कुल कितना

अन्तर आया है। यह आकलन करने में कठिनाई केवल उच्च शिक्षा के लिए नामांकन की संघटना पर विस्तृत आँकड़ों की कमी के कारण ही नहीं बल्कि शैक्षणिक क्षेत्र में भारत की आरक्षण नीतियों की संरचना और उनके लागू करने के तरीके की जटिलता के कारण भी है। पहली बात यह है कि आरक्षण नीतियाँ केवल सार्वजनिक संस्थानों पर लागू होती हैं। अधिकतर भारतीय उच्च शिक्षा संस्थान केन्द्रीय या राज्य सरकार के नियन्त्रण में हैं, लेकिन 1990 के दशक के शुरुआती बरसों के बाद से निजी संस्थानों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

वस्तुतः केन्द्र द्वारा नियन्त्रित सभी उच्च शिक्षा संस्थानों में, 15 प्रतिशत सीटें अनुसूचित जातियों के सदस्यों के लिए और 7.5 प्रतिशत सीटें अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए आरक्षित हैं; यह अनुपात राष्ट्रीय जनसंख्या में दलितों और आदिवासियों की हिस्सेदारी के अनुसार स्थापित किए गए थे।[6] उच्च शैक्षिक संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए सीटों का आरक्षण हालाँकि 1950 के दशक की शुरुआत में राष्ट्रीय नीति के रूप में स्थापित हो गया था लेकिन इस नीति का वास्तविक कार्यान्वयन विभिन्न क्षेत्रों और संस्थानों में एक या दो दशक देर से हुआ, और अब भी यह पूरी तरह से भारत में हर जगह स्थापित नहीं हुई है। राज्य स्तर पर नियन्त्रित उच्च शिक्षा संस्थानों के मामले में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों का प्रतिशत, राज्य की आबादी में इन समूहों के (अनुमानित) अनुपात के अनुसार निर्धारित किया जाता है। कुछ राज्यों में आरक्षित सीटों का कुछ प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों (ओबीसी) के लिए भी है।

सामान्य प्रविष्टि सीटें सबसे पहले, सम्बन्धित परीक्षा में सबसे अधिक अंक पाने वाले आवेदकों द्वारा, भरी जाती हैं। जहाँ ओबीसी सीटें आरक्षित हैं, वे भी अधिक अंक पाने वाले आवेदकों के आधार पर लगभग हमेशा भर जाती हैं – इनका कट-ऑफ पॉइण्ट सामान्य प्रविष्टि की सीटों के कट-ऑफ पॉइण्ट से कुछ कम रहता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों के मामले में न्यूनतम योग्यता, सामान्य प्रविष्टियों के लिए कट-ऑफ बिन्दु से काफी नीचे निर्धारित की जाती है, कुछ संस्थाओं में किसी तरह की न्यूनतम परीक्षा की आवश्यकता भी नहीं होती; अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए अक्सर ही आयु सीमा में भी छूट दी जाती है। फिर भी, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की आरक्षित सीटें अक्सर खाली रह जाती हैं – विशेष रूप से विशिष्ट संस्थानों में – क्योंकि वहाँ इन समूहों के ऐसे पर्याप्त आवेदक नहीं होते जिन्होंने माध्यमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर ली हो और प्रवेश के लिए बाकी अर्हताएँ भी पूरी करते हों।[7]

आरक्षण नीतियों के प्रभाव का एक ठोस साक्ष्य, पुणे, महाराष्ट्र में एक सम्मानित क्षेत्रीय मेडिकल कॉलेज पर पटवर्धन और पल्शीकर के अध्ययन (1992) से सामने आया है। उन्होंने पाया कि आरक्षित सीटों पर भर्ती किए गए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के एक नमूने के लगभग 1/6 छात्रों ने प्रवेश योग्यता परीक्षा में इतने अंक पाए थे कि उन्हें सामान्य प्रविष्टि वर्ग में भर्ती किया जा सकता था। आरक्षित सीटों पर दाखिला लेने वाले लगभग 5/6 ओबीसी छात्रों को सामान्य प्रविष्टि वर्ग में भर्ती किया जा सकता था (पटवर्धन और पल्शीकर 1992: 44)।

तो हम भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के प्रतिनिधित्व पर आरक्षण नीतियों के समग्र प्रभाव के बारे में क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? पहली बात तो यह कि हम काफी विश्वास से यह बात मान सकते हैं कि आरक्षित सीटें न होतीं तो वस्तुतः सभी अभिजात भारतीय विश्वविद्यालयों और पेशेवर और तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों में (इनमें से अधिकतर केन्द्र द्वारा नियन्त्रित होते हैं) पढ़ रहे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लगभग कोई भी छात्र इनमें दाखिला न पा सकते थे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बहुत कम छात्र ही सामान्य प्रवेश के लिए खुली प्रतियोगिता में सफल हो पाते हैं, क्योंकि उनमें से बहुत कम ही उच्च गुणवत्ता वाली माध्यमिक शिक्षा पा सकते हैं या निजी रूप से पैसे खर्च करके उच्च शिक्षा की तैयारी के लिए आवश्यक कार्यशालाओं और ट्यूटोरियल्स में प्रवेश ले पाते हैं; ये वे घटक हैं जिनके कारण वित्तीय रूप से समर्थ परिवारों के बच्चों को प्रतियोगी बढ़त मिलती है। प्रवेश के लिए कम कट-ऑफ पॉइण्ट के बावजूद, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र आम तौर पर ऐसे संस्थानों में उपलब्ध आरक्षित सीटों को नहीं भर पाते हैं।

अधिकांश भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों के मामले में, जिनमें प्रवेश लेने की शर्तें अभिजात संस्थानों की तुलना में कम कड़ी हैं, इस बात का अनुमान लगा पाना बहुत मुश्किल है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन की संख्या का श्रेय आरक्षण नीतियों को किस सीमा तक दिया जा सकता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के काफी आवेदक कुछ गैर-अभिजात संस्थानों की प्रवेश योग्यता परीक्षाओं में इतने अंक ले आते हैं कि उन्हें सामान्य प्रविष्टि से प्रवेश मिल सकता है। कई मामलों में, आरक्षण नीतियों का प्रभाव केवल लाभार्थी छात्रों को बेहतर और ज्यादा गुणवत्ता वाले संस्थानों तक

पहुँचने तक ही दिखता है। लेकिन आरक्षित सीटों के बिना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सम्भावित छात्रों के लिए किसी उच्च शिक्षा संस्थान का आकर्षण काफी हद तक कम हो जाने की आशंका है। एक बात तो यह है कि आरक्षित सीटों की उपलब्धता के कारण अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के छात्र अधिक गुणवत्तापूर्ण संस्थान में प्रवेश पा सकते हैं – और इस तरह, नौकरी पाने में उच्च शिक्षा की उस डिग्री का मूल्य-निरूपण भी अधिक होता है। दूसरा, आरक्षित सीट पर प्रवेश, वित्तीय सहायता और सरकारी प्रावधानों तक अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के छात्र की पहुँच को बढ़ाता है, इसके बिना संस्थान में पढ़ पाना बहुत मुश्किल साबित हो सकता है। छात्रवृति, विशेष छात्रावास, भोजन, सामान और पुस्तक ऋण की सुविधा के सरकारी प्रावधानों ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बहुत से छात्रों को उच्च शिक्षा में प्रवेश पाने और उसे जारी रखने में सक्षम बना दिया है: भले ही इस तरह की सहायता छात्रों की सभी आर्थिक और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए आम तौर पर अपर्याप्त होती हैं, लेकिन यह अक्सर इस स्तर पर निर्णायक सिद्ध होती हैं कि इसके बूते कोई छात्र अपनी शिक्षा जारी रखने का फैसला कर पाता है (मैण्डलसहन और विक्ज़ाएनि 1998)।

उच्च शिक्षा में भारत की आरक्षण नीति के समग्र मात्रात्मक महत्त्व को समझने के लिए, मैं इस बात का अनुमान लगाऊँगा कि आरक्षण नीतियों से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कितने छात्र 'वांछनीय' उच्च शिक्षा कार्यक्रमों में दाखिला लेने में सक्षम हुए हैं। मोटा-मोटा अनुमान लगाने के लिए, हम कम प्रतिष्ठा वाले कला कार्यक्रमों के अलावा किसी भी कार्यक्रम को (अपेक्षाकृत) वांछनीय मान सकते हैं। राव (2002:47, तालिका 1) के अनुसार, 1996-97 में भारतीय विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जातियों के लगभग 5,10,000 छात्र और अनुसूचित जनजातियों के लगभग 1,80,000 छात्र नामांकित थे। पिछले भाग में मैंने जो अनुमान उद्धृत किए वे बताते हैं कि अनुसूचित जातियों के लगभग 60 प्रतिशत छात्र और अनुसूचित जनजातियों के लगभग 75 प्रतिशत छात्र कला विषयों में नामांकित थे। ये आँकड़े दर्शाते हैं कि अनुसूचित जातियों के लगभग 2,00,000 छात्र और अनुसूचित जनजातियों के लगभग 45,000 छात्र बाकी विषयों – वाणिज्य, विज्ञान, इंजीनियरिंग, आदि में नामांकित थे। निश्चित रूप से इन छात्रों में से ठीक-ठाक संख्या में छात्र, इनसे कुछ अपेक्षाकृत कम दक्षतापूर्ण कार्यक्रमों में प्रवेश के योग्य होते; अतः एक मोटे अनुमान के अनुसार आरक्षण नीतियों द्वारा वांछनीय पाठ्यक्रमों में पढ़ पाने के लिए समर्थ बनाए गए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों की कुल संख्या 2,00,000 है।

कुल मिलाकर, यह निष्कर्ष उचित लगता है कि 1990 के दशक के अन्तिम वर्षों में, प्रवेश में आरक्षण नीतियों के अस्तित्व की वजह से भारतीय उच्च शिक्षा में नामांकित अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों में से लगभग एक तिहाई उच्च शिक्षा संस्थानों में अपेक्षाकृत वांछनीय पाठ्यक्रमों में नामांकित थे।[8] इस सम्भावना को ध्यान में रखते हुए भी कि आरक्षण नीतियों ने काफी संख्या में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को, कम वांछनीय पाठ्यक्रमों में उच्च शिक्षा लेने के लिए प्रोत्साहित किया, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 1990 के दशक के अन्त में, उच्च शिक्षा पा रहे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के 7,00,000 छात्रों में से कम से कम आधे मामले में ये नीतियाँ निर्णायक सिद्ध हुईं। फिर भी, पिछले भाग में निकाले गए आँकड़ों से संकेत मिलता है कि आजादी के 50 साल बाद भी, भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए आरक्षित कम से कम आधी सीटें, और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए आरक्षित कम से कम दो तिहाई सीटें, खाली रह जाती हैं।

आरक्षण नीति और नामांकित लाभार्थी छात्रों की शैक्षिक योग्यताएँ

पहले प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से पता चलता है कि हाल के दशकों में भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन में महत्त्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है, हालाँकि इन संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व, सामान्य आबादी में उनकी संख्या की तुलना में आनुपातिक रूप से, अभी भी काफी कम है। इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय आरक्षण नीतियों ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा जारी रखने के अवसर बढ़ाए हैं। बहरहाल वे यह काम बहुत हद तक, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के लिए सामान्य प्रविष्टि आवेदकों के लिए अपेक्षित अंक की तुलना में काफी कम न्यूनतम परीक्षा अंकों की माँग रख कर पाई हैं। प्रवेश योग्यता परीक्षा के अंकों को उच्च शिक्षा में प्रदर्शन का एक बढ़िया संकेतक तो नहीं माना जा सकता लेकिन कम अंक लाना, जो खास कर सम्भ्रान्त संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के ज्यादातर विद्यार्थियों की विशेषता से हैं, विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा पाने की पर्याप्त तैयारी न होना दर्शाते हैं। कम अंक और पर्याप्त शैक्षिक तैयारी की कमी, दोनों ही निश्चित रूप से सामाजिक-आर्थिक असुविधा से जुड़े हैं जो

उच्च शिक्षा पाने जा रहे अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के छात्र के सामने आने वाली चुनौती को बढ़ाते हैं।

सम्भ्रान्त भारतीय संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की स्थिति का बढ़िया उदाहरण, आईआईटी (भारतीय प्रौद्यौगिकी संस्थान) में उनके अनुभव हैं। आईआईटी के पाठ्यक्रम भारत में कई सबसे अच्छे छात्रों को वहाँ खींच लाते हैं। 1970 के दशक के प्रारम्भ में पाँच प्रमुख आईआईटी ने प्रवेश में आरक्षण नीतियाँ लागू करना शुरू कर दिया था, प्रवेश परीक्षा में सामान्य प्रविष्टि के छात्रों के कट-ऑफ अंकों से काफी नीचे अंकों वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को दाखिले दिए गए। शुरू के कुछ बरसों में पाया गया कि आरक्षण के जरिए प्रवेश लेने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बहुत से विद्यार्थियों ने ठीक से पढ़ाई की तैयारी नहीं की थी और उन्होंने पढ़ाई अधूरी छोड़ दी। इसके बाद आईआईटी ने प्रवेश परीक्षा में सामान्य प्रविष्टि के कट-ऑफ अंकों के दो-तिहाई से कम अंक लाने वाले छात्रों के लिए एक बरस की अवधि के तैयारी कार्यक्रम की स्थापना की। तैयारी कार्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने पर ही इन छात्रों को आरक्षित सीटों पर प्रवेश मिल पाता है। इसके बावजूद, 1990 के दशक के मध्य तक, जब आरक्षण नीतियों और उनसे जुड़े कार्यक्रमों को चलते दो दशक हो चुके थे और प्रक्रिया अच्छी तरह से स्थापित हो गई थी, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित कई सीटें खाली रहती रहीं। 1994-95 के लिए प्रवेश आँकड़ों से संकेत मिलता है कि अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिये आरक्षित सीटों में से लगभग आधी सीटें ही भर पाईं, जबकि अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिये आरक्षित सीटों में से 1/6 से भी कम सीटें भर पाईं।[10]

गैर-अभिजात उच्च शिक्षा संस्थानों में भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिये आरक्षित सीटें अक्सर खाली रह जाती हैं। ऐकारा (1980) के अनुसार, 1970 के दशक में, गुजरात के मेडिकल कॉलेजों ने अपनी आरक्षित सीटों में से 5 प्रतिशत भी नहीं भरी थीं। वेलस्कर (1986) ने मुम्बई में मेडिकल कॉलेजों पर बहुत उपयोगी शोध किया जिससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकले। 1969 में, अनुसूचित जातियों के छात्रों ने अपने लिए आरक्षित 11 प्रतिशत सीटों में से आधी से भी बहुत कम भरी थीं। बाद में, मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता मानदण्ड कम किए गए, लेकिन 1979-80 और 1980-81 में उनमें से एक तिहाई ही अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कोटे की सीटें

भर पाए – जबकि कुछ कॉलेजों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र थे ही नहीं। हाल ही के दिनों में मुम्बई के मेडिकल कॉलेज अक्सर अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों को भरते रहे हैं (कभी-कभी, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, ऐसे छात्र भर्ती कर लिए जाते हैं जिनके अनुसूचित जातियों के होने के दावे संदिग्ध होते हैं); लेकिन पूरे देश में मेडिकल कॉलेज इस सम्बन्ध में पीछे चल रहे हैं। मेडिकल कॉलेजों में दाखिले ले रहे अनुसूचित जातियों के छात्रों में कुछ प्रमुख दलित जातियों और शहरी इलाकों में रहने वाले अपेक्षाकृत सम्पन्न दलित परिवारों से आने की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है; अपेक्षाकृत सम्पन्न होने के कारण उनमें से कुछ निजी माध्यमिक विद्यालयों में जा पाने में सक्षम होते हैं। अधिक संख्या में अपेक्षाकृत सुविधासम्पन्न पृष्ठभूमि वाले अनुसूचित जातियों के आवेदकों के आने की इस प्रवृत्ति से पता चलता है कि दाखिला लेने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों की शैक्षणिक योग्यता का औसत स्तर बढ़ रहा है।

समय के साथ-साथ, कम से कम बेहतर कालेजों में तो, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षित सीट के छात्रों और सामान्य प्रविष्टि के छात्रों के औसत प्रवेश परीक्षा अंकों में अन्तर के कम होते जाने के कुछ साक्ष्य उपलब्ध हैं। इसका सबसे अच्छा साक्ष्य, पटवर्धन और पल्शीकर (1992) बहुत बारीकी से किए गए विस्तृत अध्ययन से आता है, जिन्होंने पुणे विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक प्रमुख मेडिकल कॉलेज, पुणे के बी.जे. मेडिकल कॉलेज में पढ़ने वाले छात्रों से जुड़े आँकड़ों के एक समृद्ध सेट को संकलित करके उसका विश्लेषण किया। यह कॉलेज पाँच अलग-अलग श्रेणियों के छात्रों को स्वीकार करता है, जिनमें सामान्य प्रविष्टि की सीटें और ओबीसी, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और 'विमुक्त जनजातियों' (क्षेत्रीय आदिवासी समुदायों का एक समूह) के लिए आरक्षित सीटें शामिल हैं। हर श्रेणी के प्रवेश परीक्षा के अंकों की तुलना करते हुए, 1970, 1980 और 1985 में भर्ती छात्रों का अध्ययन करने पर पाया गया – और यह आश्चर्य की बात नहीं है – कि प्रवेश के लिए कट-ऑफ सबसे ज्यादा सामान्य प्रविष्टि श्रेणी में था और क्रमशः ओबीसी, अनुसूचित जाति और जनजाति श्रेणियों में कम होता चला गया था। महत्त्वपूर्ण यह है कि, अध्ययन में हर श्रेणी में प्रवेश के लिए कट-ऑफ में सामान्य रूप से वृद्धि की प्रवृत्ति दर्ज की गई है, इसके साथ ही भर्ती किए गए छात्रों के अंकों और विभिन्न श्रेणियों के अंकों में अन्तर में भी सामान्य रूप से कमी आई है। लेखकों का विचार है कि आरक्षित समूहों के प्रवेश के लिये कट-ऑफ अंक शायद इसलिए बढ़े हैं कि ओबीसी, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आवेदकों में उन माता-पिता के बच्चों का अनुपात बढ़ रहा है जो शैक्षिक संस्थानों में आरक्षित सीटों तक

अपनी पहुँच के चलते अपनी शैक्षिक और सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में सफल रहे हैं।

'मलाईदार परत' का मुद्दा

भारत में आरक्षण नीतियों के आलोचकों ने दावा किया है कि ये नीतियाँ असमानतापूर्ण हैं क्योंकि ये वंचित समूहों के अधिक जरूरतमन्द सदस्यों के बजाय, खास तौर से समर्थ आवेदकों – मलाईदार परत – को बहुमूल्य शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराती हैं। इस प्रकार तर्क दिया जाता है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आवेदकों के लिए आरक्षण इन समूहों के भीतर असमानताओं को बढ़ाता है और अन्य समूहों के उन सामान्य प्रवेश वाले आवेदकों के लिए शैक्षिक अवसर कम करता है जिनकी स्थिति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थियों की तुलना में बदतर हो सकती है।

मुझे विश्वविद्यालय में प्रवेश में आरक्षण नीतियों के कारण, समर्थ दलितों और आदिवासियों के बाकी जनसंख्या की कीमत पर लाभान्वित होने और असमानताएँ बढ़ने का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं मिला है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थियों के सामाजिक-आर्थिक वर्ग की तुलना आरक्षण नीतियों के कारण विश्वविद्यालय में प्रवेश से वंचित रह गए उन सामान्य प्रविष्टि के आवेदकों की पृष्ठभूमियों से करके ही हम यह तय कर पाएँगे कि आरक्षण नीतियों के कारण सचमुच ही असमानतापूर्ण पुनर्वितरण सम्बन्धी प्रभाव तैयार हुए हैं या नहीं। लेकिन लगता है ऐसे आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। खण्ड-2 में जिन पर चर्चा हुई वे साक्ष्य स्पष्ट करते हैं कि, विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों में भर्ती किए गए छात्रों में, गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र कम सुविधापूर्ण सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं। इससे पता चलता है कि इस बात की कोई आशंका नहीं है कि आरक्षण नीतियों के कारण संस्थानों में प्रवेश न पा सकने वाले गैर-अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विद्यार्थी, इन नीतियों से लाभ पाने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों की तुलना में कम समर्थ हैं।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समूहों के भीतर आरक्षण नीतियों के पुनर्वितरक प्रभावों के बारे में साक्ष्यों की कोई कमी नहीं हैं। निस्सन्देह विश्वविद्यालय प्रवेश में भारत की आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों में बहुमत दलितों और आदिवासियों की एक मलाईदार परत का

है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो केवल बेहतर स्थिति वाले दलित और आदिवासी परिवारों के बच्चे ही स्कूल में पूरी माध्यमिक शिक्षा पाने में सक्षम होते हैं, और इस प्रकार कॉलेज या विश्वविद्यालय के लिए आवेदन करने की स्थिति में होते हैं। महाराष्ट्र के प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में क्षय (समय-पूर्व शिक्षा त्यागना) और गतिहीनता (एक ही वर्ष-स्तर पर अटकना) [wastage and stagnation] के एक अध्ययन में, हेनरिक और वानखेड़े (1985) दिखाते हैं कि माध्यमिक शिक्षा पूरी करने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लड़कियों के बजाय लड़के होने की अधिक सम्भावना है, और सबसे ज्यादा सम्भावना इस बात की है कि वे दलित और आदिवासी आबादी के सबसे ऊपर के सामाजिक-आर्थिक स्तर से आने वाले परिवारों के बच्चे होंगे। उच्च शिक्षा बढ़िया कमाई की सम्भावना जगाती है और स्कूल के लिए जरूरी सामानों के खर्चे, आवास और सम्भवतः परिवहन पर भी खर्च की जरूरत होती है जिनकी भरपाई सरकारी सहायता कार्यक्रमों से विरले ही पूरी हो पाती है। इसका अर्थ है कि माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद, सबसे सम्पन्न छात्र ही किसी शैक्षणिक संस्थान में कई वर्ष पढ़ते रह सकते हैं।

जैसा कि वेलस्कर (1986:604) ध्यान दिलाती हैं, "... स्पष्ट है कि यह (आरक्षण) नीति लगातार दलित आबादी के अपेक्षाकृत सुविधासम्पन्न वर्गों के, औसत दर्जे के लोगों की पहुँच के एक रास्ते के रूप में काम कर रही है।" वे गौर करती हैं कि अनुसूचित जातियों के छात्रों का एक छोटा सा वर्ग है जो सामान्य प्रविष्टि के प्रवेशार्थियों जैसा ही समान प्रदर्शन करता है; बढ़िया प्रदर्शन करने वाले ये बच्चे आम तौर पर समर्थ परिवारों और अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने वाले माध्यमिक विद्यालयों से आते हैं। पटवर्धन और पल्शीकर (1992) ने निष्कर्ष निकाला है कि आरक्षण शहरी और पुरुष छात्रों के पक्षधर हैं और वे आनुपातिक रूप से अनुसूचित जाति समूह के अन्दर मुठ्ठीभर विशेष उप-जातियों को और अनुसूचित जनजाति समूह के अन्दर कुछ विशेष उप-जनजातियों को ही लाभ पहुँचाते हैं। वे यह भी कहते हैं कि आरक्षित सीटों के लाभार्थियों में लाभ-प्राप्त समूहों के ऐसे छात्रों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है जिनके परिवारों को सकारात्मक विभेद का लाभ मिला और इस तरह वे मध्यम वर्ग और ऊपरी-मध्यम वर्ग का हिस्सा बने हैं; जबकि अधिक पिछड़ी उप-जातियों और जनजातियों के बच्चों के लिए प्रतियोगिता में भाग लेना तक कठिन होता है। इस विचार को अभिजात आईआईटी के अनुभव से स्पष्ट अनुभवजन्य समर्थन प्राप्त होता है: किरपाल और गुप्ता (1999: 148) ने पाया कि 1989 से 1992 तक आईआईटी, बी.टेक. कार्यक्रमों के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों में से 40 प्रतिशत छात्र, दूसरी पीढ़ी के लाभार्थी थे – यह आँकड़ा निस्सन्देह

1970 के दशक की शुरुआत की तुलना में अधिक है, जब आरक्षित सीटों पर प्रवेश पहलेपहल लागू किया गया था।

राव ने लिखित रूप में उपर्युक्त टिप्पणियों की पुष्टि की, "...आरक्षण की योजनाएँ सुविधाओं के कुछ खास वर्गों तक सीमित रह जाने से रोकने के लिए बनाई गईं लेकिन यह लाभार्थी वर्ग के भीतर, सुविधाओं को कुछ खास वर्गों तक सीमित करने का काम करती दिखती हैं ... पहले ही सबसे ज्यादा लाभ पा चुके वे लाभार्थी लाभ का बहुत अधिक हिस्सा पाते हैं" [राव 2001: 51]। यह प्रक्रिया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति समूहों की सभी उप-जातियों और जनजातियों के साथ ही उनके सभी सामाजिक-आर्थिक स्तरों के भीतर चलती है। इस स्थिति के चलते ही आरक्षित सीटों को और महीन ढंग से विभाजित श्रेणियों में बाँटने की माँग उठती है ताकि कम समर्थ उप-जातियाँ और जनजातियाँ (जो आम तौर पर कुछ ही आरक्षित सीटें पाती हैं) अपनी खुद की अलग आरक्षण श्रेणी की हकदार बन सकें।[11]

साक्ष्य स्पष्ट रूप से इस तर्क का समर्थन करते हैं कि विश्वविद्यालय में प्रवेश में आरक्षण की नीतियों ने प्राथमिक रूप से दलित और आदिवासी आबादी के भीतर सम्पन्नतम व्यक्तियों और उपसमूहों को लाभ प्रदान करके दलितों और आदिवासियों के बीच असमानताओं में वृद्धि की है, कम से कम उनका प्रत्यक्ष प्रभाव तो यही दिखता है। बहरहाल, सकारात्मक विभेद की नीतियों से कम सम्पन्न लाभार्थी समूहों के सदस्यों को इस मायने में अप्रत्यक्ष रूप से फायदा हो सकता है कि ये नीतियाँ प्रत्यक्ष लाभार्थियों को अपने कम सम्पन्न रिश्तेदारों और समुदाय के सदस्यों को नौकरियाँ देने और कई तरह से उनकी मदद करने के लिए अधिक प्रभावी और अधिक व्यापक ढंग से सक्षम बनाती हैं। भारत में ऐसे अप्रत्यक्ष अनुभवजन्य लाभों का महत्त्व बहुत विवादास्पद है।

'हरिजन अभिजात वर्ग' पर सच्चिदानन्द (1977) का काम इस आम विचार का समर्थन करता है कि आरक्षण नीतियों ने अपनी छोटी-मोटी तरक्की के लिए समर्पित और व्यापक दलित समुदाय की चिन्ता न करने वाला एक सुविधासम्पन्न दलित अभिजात वर्ग तैयार किया है। ऐसी आलोचनाएँ खुद कुछ दलितों के बीच से भी उठी हैं जिन्होंने पहले आरक्षित सीटों के अनुसूचित जातियों के धारकों से कमतर होने का भाव जुड़ने पर चिन्ता जताई थी। लेकिन संसद के दलित सदस्यों के साक्षात्कारों पर रिपोर्टिंग में, मैण्डलसहन और विक्ज़ाएनि (1998: अध्याय-8) दिखाते हैं कि – किसी भी तरह के अभिजात होने की छाप छोड़ना तो दूर की बात

है - वे खुद अक्सर व्यक्तिगत, भौतिक और सामाजिक अभाव और एक शत्रुतापूर्ण ढाँचे से संघर्ष कर रहे होते हैं। मेंडेलसॅन और विसियानी को आरक्षण नीतियों के दलित राजनीतिज्ञों के एक विशेष रूप से स्वार्थी और अपने समाज से बेपरवाह समुदाय तैयार करने के साक्ष्य नहीं मिलते; असल में यह राय देते हुए कि अपने समुदायों के नेता के रूप में एक मजबूत और अधिक स्वतन्त्र भूमिका निभाने के लिए उन्हें सक्षम करके "अछूतों के बीच एक अधिक अधिकारसम्पन्न समूह का निर्माण, सामान्य अछूत आबादी के लिए लाभकारी हो सकता है" वे सच्चिदानन्द के निष्कर्ष को उलटते दिखते हैं (पृ. 255)।

खण्ड-2. भारतीय विश्वविद्यालयों में आरक्षण नीतियाँ और शैक्षिक प्रदर्शन

आरक्षण नीति के लाभार्थियों का शैक्षणिक प्रदर्शन

दुर्भाग्य से, उच्च शिक्षा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के प्रदर्शन पर आँकड़ों की उपलब्धता काफी सीमित है। ज्यादातर मामलों में ये आँकड़े अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों पर प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों के बारे में ही हैं। अगर इनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कुछ अन्य छात्रों को शामिल किया भी गया होता है तो आम तौर पर उनकी संख्या कम होती है; इसलिए इस बात की अधिक सम्भावना रहती है कि समग्र आँकड़े आरक्षण नीतियों से लाभ पाने वाले लोगों के अनुभव को प्रतिबिम्बित करेंगे। निम्नलिखित पैराग्राफों में मैं कालानुक्रम में, सबसे अधिक प्रासंगिक अध्ययनों और निष्कर्षों के बारे में बताऊँगा।

उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन के शुरुआती व्यवस्थित अध्ययन 1960 के दशक के अन्त में और 1970 के दशक के शुरू में जमा किए गए आँकड़ों पर आधारित हैं। कार्लेकर (1975) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) द्वारा शैक्षणिक वर्ष 1965-66 में किए गए 15 विश्वविद्यालयों के एक सर्वेक्षण की चर्चा करते हैं जिसमें पाया गया कि अनुसूचित जातियों के 4,100 छात्रों (विभिन्न स्नातक और स्नातकोत्तर क्षेत्रों में) में से केवल 36 प्रतिशत ने अपनी परीक्षा उत्तीर्ण की। गैलण्टर (1984: 63) 1969 में हुए महाराष्ट्र समाज कल्याण विकास के एक अध्ययन का हवाला देते हैं जिसमें पाया गया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के केवल 8 प्रतिशत छात्रों ने नियत अध्ययन अवधि, चार साल, में कॉलेज की डिग्री प्राप्त की; और अन्ततोगत्वा केवल 15 प्रतिशत छात्रों ने ही डिग्री प्राप्त की। जिनको डिग्री मिली उनके ग्रेड औसत रूप से

नीचे ही थे। चिटणीस (1981) ने 1960 के दशक के अन्त में मुम्बई में कला और विज्ञान कॉलेजों का सर्वेक्षण किया और पाया कि अनुसूचित जातियों के अधिकांश छात्रों ने उन कॉलेजों में दाखिला लिया जिनके छात्र मुम्बई विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सबसे कम सफल रहते थे। अधिकांश कॉलेजों में अनुसूचित जातियों के छात्रों का औसत शैक्षणिक प्रदर्शन गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में बदतर था, और अनुसूचित जातियों के छात्रों के बीच क्षय (समय-पूर्व शिक्षा त्यागना) और गतिहीनता (एक ही वर्ष-स्तर पर अटकना) की दरें बहुत अधिक थीं।

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद (आई.सी.एस.एस.आर.) द्वारा प्रायोजित एक प्रमुख शोध परियोजना में 1972-73 में 15 भारतीय राज्यों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हाईस्कूल और कॉलेज छात्रों के व्यवस्थित सर्वेक्षण किए गए थे। इस अध्ययन के निष्कर्षों पर रिपोर्टिंग करते हुए, चिटणीस (1981) ने संकेत दिया कि प्रश्नावली का उत्तर देने वाले ज्यादातर छात्र अपनी पढ़ाई में संतोषजनक प्रगति कर रहे थे। लेकिन उन्होंने यह भी बताया कि सर्वेक्षण अन्य छात्रों की तुलना में अनुसूचित जातियों के छात्रों के प्रदर्शन पर प्रकाश नहीं डालते, और उन्होंने सावधान किया कि एक सफल शैक्षिक करियर बनाने के लिए अनुसूचित जातियों के छात्रों को कई चुनौतीपूर्ण बाधाओं का सामना करना होता है। कुछ आई.सी.एस.एस.आर. सर्वेक्षणों, उपर्युक्त यूजीसी अध्ययन और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त की वार्षिक रिपोर्ट के आँकड़ों का इस्तेमाल करते हुए कार्लेकर (1975) ने निष्कर्ष निकाला कि उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जातियों के छात्रों के शिक्षा अधूरी छोड़ने की दर (मुख्यतः आर्थिक दबाव के कारण) ज्यादा थी और साथ ही उनके शैक्षणिक अंक भी अपेक्षाकृत कम थे।

ऐकारा (1980) ने 1970 के दशक के आरम्भिक वर्षों में मुम्बई के 10 कॉलेजों से एकत्रित आँकड़ों के आधार पर विश्वविद्यालय स्तर पर अनुसूचित जातियों के छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन का एक जानकारीपूर्ण अध्ययन किया। अध्ययन में शामिल निजी और सरकारी कॉलेजों के पाठ्यक्रम कई क्षेत्रों (कला, विज्ञान, वाणिज्य, कानून, चिकित्सा और इंजीनियरिंग) में उपलब्ध थे। इन सभी कॉलेजों में (चार साल की कॉलेज शिक्षा के सभी स्तरों पर) अध्ययन की अवधि के दौरान, अनुसूचित जातियों के छात्र 10 प्रतिशत से कुछ ही अधिक थे। अनुसूचित जातियों के अधिकांश छात्रों ने (कम प्रतिष्ठित और कम माँग वाले) निजी कॉलेजों में दाखिला लिया और उनमें से अधिकांश एक ऐसे कॉलेज में भर्ती हुए जो मुख्य रूप से अनुसूचित जातियों के

विद्यार्थियों के लिए ही था। अनुसूचित जातियों के बहुत कम छात्र (अधिक प्रतिष्ठित और अधिक माँगवाले) सरकारी कॉलेजों और/या (अत्यधिक प्रतिष्ठित) चिकित्सा और इंजीनियरिंग कॉलेजों में पढ़ रहे थे।

1970 से 1973 तक के तीन शैक्षणिक वर्षों में, 10 महाविद्यालयों में सभी स्तरों पर दाखिला लेने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों और स्तरीकृत गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों से सम्बन्धित आँकड़ों की तुलना करने पर ऐकारा ने पाया कि वार्षिक परीक्षाओं में अनुसूचित जातियों के केवल 23 प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण हुए जबकि गैर-अनुसूचित जातियों के 52 प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण हुए। दोनों ही वर्गों के असफल छात्रों में से ज्यादातर ने फिर से परीक्षा दी लेकिन सफल नहीं हुए और इस तरह वे शैक्षिक स्तर पर ठहरे रह गए; बाकी ने परीक्षा दी ही नहीं, उन्होंने पढ़ाई ही छोड़ दी। इस तरह, पढ़ाई छोड़ने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों की बड़ी संख्या ने कॉलेज के प्रथम वर्ष में दर्ज रहते हुए ही पढ़ाई छोड़ दी लेकिन इनमें से कई को कॉलेज में उसी वर्ष-स्तर पर पढ़ते हुए दो या तीन वर्ष हो चुके थे। अनुसूचित जातियों के जिन छात्रों ने 1970 में दाखिला लिया था, उनमें से 60 प्रतिशत छात्र तीन वर्ष के पहले ही पढाई छोड़ चुके थे। 1973 के बाद के आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण ऐकारा के पास अन्ततः स्नातक की उपाधि प्राप्त करने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों के सटीक आँकड़े नहीं थे लेकिन यह अनुमान उचित ही लगता है कि उनकी संख्या 20 प्रतिशत से कम ही रही होगी।

ऐकारा के अध्ययन में शामिल सभी 10 महाविद्यालयों में, गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में अनुसूचित जातियों के छात्रों का शैक्षणिक प्रदर्शन कमतर था। दिलचस्प है कि दूसरे महाविद्यालयों में दाखिला लेने वाले (बहुत से) अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण सरकारी और/या मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों में दाखिला लेने वाले (थोड़े से) अनुसूचित जातियों के छात्रों के परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की सम्भावना काफी ज्यादा थी। छात्रों का यह समूह, कम प्रतिष्ठित कॉलेजों में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में, बहुत ही अच्छी तरह से प्रेरित, काफी अधिक कुशल, और बेहतर तैयार था; पाया गया कि इन्हें अध्ययन करने के लिए सहायता भी प्राप्त हो रही थी। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि आरक्षित सीटों का प्रावधान न होता तो अधिक चुनौतीपूर्ण कॉलेजों और क्षेत्रों में नामांकन करवाने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों की संख्या और भी कम होती। मुम्बई के कॉलेजों के अध्ययन से ऐकारा ने निष्कर्ष निकाला कि, बढ़िया शैक्षिक प्रदर्शन करने वाले अनुसूचित जातियों के थोड़े से छात्रों को छोड़ दें तो, अपने गैर-अनुसूचित जातियों के

साथियों की तुलना में ज्यादातर अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों की क्षय (समय-पूर्व शिक्षा त्यागना) और गतिहीनता (एक ही वर्ष-स्तर पर अटकना) की दरें काफी अधिक थीं और प्रदर्शन और प्रगति की दरें कम।

1970 के दशक में मुम्बई में मेडिकल कॉलेजों पर पहले उद्धृत अपने शोध में वेलस्कर (1986) ने पाया कि गैर-अनुसूचित जातियों के लगभग तीन चौथाई छात्रों ने समय पर अपना डिग्री कार्यक्रम समाप्त कर लिया जबकि अनुसूचित जातियों के लगभग एक चौथाई छात्रों ने ही समय पर अपना डिग्री कार्यक्रम समाप्त किया। वकील (1985:138) ने भी 1960 के दशक के उत्तरार्ध में और 1970 के दशक के शुरू में रायपुर के नेहरू मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लेने वाले अनुसूचित जातियों के छात्रों के सम्बन्ध में ऐसी ही सूचना दी: प्रवेश लेने वाले 42 छात्रों में से केवल चार छात्रों ने साढ़े चार साल की मानक अवधि में पढ़ाई पूरी की, 23 ने आठ वर्षों में पढ़ाई पूरी की। वेलस्कर ने पाया कि अनुसूचित जातियों के ज्यादातर छात्र अन्ततः मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों से स्नातक हो जाते हैं, आम तौर पर पढ़ाई पूरी करने के लिए उन्हें कुछ अतिरिक्त वर्षों की आवश्यकता होती है; गैर-अनुसूचित जातियों के लगभग सभी छात्र अक्सर समय पर पढ़ाई पूरी कर लेते हैं। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया कि अनुसूचित जातियों के छात्र, गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में, आम तौर पर काफी खराब शैक्षणिक पृष्ठभूमि के साथ मेडिकल कॉलेज में प्रवेश करते हैं और – कुछ अपवादों को छोड़ कर – वे ओ.बी.सी. छात्रों और सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों की तुलना में अधिक खराब प्रदर्शन करते हैं। हालाँकि, उन्होंने पाया कि वे इंजीनियरिंग कॉलेजों की तुलना में मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों से ही स्नातक होना पसन्द करते थे – सम्भवतः इसलिए क्योंकि वहाँ का सामाजिक वातावरण अधिक स्थानीय है और इस प्रकार सामान्य रूप से राष्ट्रीय संस्कृति और विशेष रूप से अंग्रेजी भाषा के साथ कम सहज अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए अधिक अनुकूल है।[12]

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर हालिया साक्ष्य, 1990 के दशक में प्रकाशित दो बहुत अच्छी तरह से डिजाइन और निष्पादित किए गए अध्ययनों में मिलते हैं। इनमें से पहला है पटवर्धन और पल्शीकर (1992) का पूर्वउद्धृत अध्ययन। लेखकों ने ना केवल 1970 से 1980 के दशकों तक की अवधि के दौरान आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों के और साथ ही सामान्य प्रविष्टि के छात्रों के एक नियन्त्रित समूह के शैक्षणिक रिकॉर्ड (प्रवेश के साथ ही साथ कॉलेज के हर साल में) संकलित किए; बल्कि उन्होंने आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले और सामान्य प्रविष्टि के बहुत से स्नातकों को

प्रश्नावली भेजी और हर उत्तरदाता से व्यक्तिगत साक्षात्कार भी किया। आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों के कॉलेज में प्रदर्शन के विषय में उनके प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं, खण्ड-3 में मैं कॉलेज के बाद छात्रों द्वारा अपने करियर के प्रदर्शन के सम्बन्ध में उनके निष्कर्षों की समीक्षा करूँगा।

जैसा कि अपेक्षित था, औसत परीक्षा अंकों का वर्गवार क्रम इस प्रकार रहा– सामान्य प्रविष्टि वर्ग के छात्र शीर्ष पर, फिर ओ.बी.सी. छात्र, अनुसूचित जातियों के छात्र और अन्त में अनुसूचित जनजातियों के छात्र।[13] किसी परीक्षा को उत्तीर्ण करने के लिए आवश्यक प्रयासों की संख्या, डिग्री कार्यक्रम को पूरा करने में लगे वर्षों की संख्या और देर-सबेर कार्यक्रम को अधूरा छोड़ देने वाले छात्रों के अनुपात की बात आने पर यह क्रम उलट जाता है। लेकिन आखिर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र खासे अनुपात में स्नातक हो जाते हैं: 1972-76 में प्रवेश लेने वाले (और 1984 तक स्नातक हुए) अनुसूचित जातियों के 92 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के 87 प्रतिशत छात्र स्नातक हो गए थे।

कुल मिलाकर, पटवर्धन और पलशीकर ने पाया कि बी.जे. मेडिकल कॉलेज में प्रवेश के समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र, शैक्षणिक रूप से अन्य छात्रों से पीछे थे और आगे पढ़ाई के दौरान वे और भी पीछे रह गए। लेकिन उन्होंने पाया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के भर्ती हुए विद्यार्थियों में से केवल 25-30 प्रतिशत असन्तोषजनक प्रदर्शन करते हैं– या तो वे पढ़ाई छोड़ देते हैं या फिर स्नातक की पढ़ाई को पूरा करने के लिए आठ साल से अधिक समय लेते हैं, या उनके अंक डिग्री कार्यक्रम/स्नातक स्तर की अन्तिम परीक्षाओं में पास होने के लिए जरूरी न्यूनतम अंकों से कुछ ही ज्यादा होते हैं। लेखक यह अनुमान भी लगाते हैं कि उनके अध्ययन की अवधि के बाद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की सफलता दर में वृद्धि हुई है– क्योंकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित सीटों पर प्रवेश के कट-ऑफ स्कोर बढ़ते जा रहे हैं।

उच्च शिक्षा संस्थानों में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के प्रदर्शन का सबसे हालिया व्यवस्थित अध्ययन किरपाल और गुप्ता (1999) ने प्रतिष्ठित आईआईटी संस्थानों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए किया है। यह निस्संकोच मान सकते हैं कि आईआईटी में दाखिला लेने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के वस्तुतः

सभी छात्र आरक्षित सीटों के माध्यम से प्रवेश ले पा रहे थे; क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय उच्च शिक्षा के इन सबसे अभिजात संस्थानों में सामान्य प्रविष्टि के लिए प्रतियोगिता विकट है।[14] 1970 के दशक में आईआईटी-मुम्बई में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के पहले के कई अध्ययनों (किरपाल 1978, किरपाल एट ऑल 1985ए, 1985बी) के बाद दोनों विद्वानों ने 1981 और 1992 के बीच, पाँचों आईआईटी – मुम्बई, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर और चैन्नई – के परिसरों में बी.टेक. कार्यक्रमों में आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों के बारे में आँकड़ों का एक समृद्ध सेट संकलित किया।

किरपाल और गुप्ता ने पाया कि सबसे पहले तो, स्नातक पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा कर लेने की समेकित औसत दर सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों के मामले में जहाँ 94 प्रतिशत थी वहीं सभी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए 84 प्रतिशत थी।[15] 1980 के दशक में आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों के बीच में ही पढ़ाई छोड़ने की दर 16 प्रतिशत थी जो 1970 के दशक में किरपाल एट ऑल (1985ए) और चिटणीस (1986) द्वारा इन छात्रों में पाई गई क्षय (समय-पूर्व शिक्षा त्यागना) की दर से काफी कम है। पहले की उन उच्चतर दरों के परिणामस्वरूप, आईआईटी ने भर्ती, तैयारी और छात्रों के पढ़ाई पूरी कर लेने के सम्बन्ध में किए जाने वाले प्रयासों में काफी सुधार की शुरुआत की जिनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बहुत से आवेदकों के लिए एक वर्ष की अवधि के रेमेडियल कार्यक्रम भी शामिल थे। किरपाल और गुप्ता द्वारा आईआईटी में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन के सम्बन्ध में ढूँढे गए प्रमुख तथ्यों को संक्षेप में 1989-1992 की अवधि में सामान्य प्रविष्टि वर्ग तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लगभग 10 प्रतिशत सैम्पल के 'मीन क्युमुलेटिव परफॉर्मेंस इण्डैक्स (एम.सी.पी.आई.)' के मायने में समझा जा सकता है।

एम.सी.पी.आई. आँकड़े इस प्रकार हैं: सामान्य प्रविष्टि लेने वाले 436 छात्रों के लिए 7.88, 115 एस.सी. छात्रों के लिए 6.23 और 21 एसटी छात्रों के लिए 5.93। जाहिर है, और कोई आश्चर्य नहीं कि आईआईटी की परीक्षाओं में सामान्य सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्रों की तुलना में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का प्रदर्शन कमतर रहा। इसके अलावा, स्नातक शिक्षा पूरी करने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र ऐसा करने में सामान्य सीटों पर प्रवेश लेने वाले अपने साथियों की तुलना में अधिक वर्ष लगाते हैं। फिर भी, कुलीन आईआईटी में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की

स्नातक शिक्षा पूरी करने की दर अब 80 प्रतिशत से अधिक है। इससे पता चलता है कि आरक्षित सीटों के ये लाभार्थी – और उन्हें प्रवेश देने वाले संस्थान – महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कर रहे हैं।

आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों के अपेक्षाकृत खराब शैक्षणिक प्रदर्शन के कारण

उच्च शिक्षा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के अनुभवों का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने उनके स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी कर लेने की दरें व्यापक रूप से अलग-अलग पाई हैं; दरों में यह अन्तर संस्था, परिस्थितियों और कालखण्ड के अनुसार दिखता है। हालाँकि वे सभी इस निष्कर्ष पर एकमत हैं कि औसत रूप से, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का शैक्षणिक प्रदर्शन अपने साथियों की तुलना में काफी कमतर है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र आम तौर पर कम प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, अध्ययन के कम रोजगारपरक क्षेत्रों में उनकी अधिक संख्या मिलती है, वे डिग्री पूरी करने में अधिक समय लेते हैं, उनका पढ़ाई अधूरी छोड़ने का प्रतिशत ज्यादा है और परीक्षा में उनके नम्बर भी कम आते हैं। किसी न किसी तरह भारत की आरक्षण नीतियों से लाभान्वित होने वाले इन छात्रों के अपेक्षाकृत खराब प्रदर्शन के लिए अनेक विश्वसनीय स्पष्टीकरण दिए जाते हैं।

सबसे पहले, बहुत कम अपवादों को छोड़ दें तो, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र, अपने साथियों की तुलना में, काफी विपन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं। जिन विद्वानों का लेखन पिछले खण्ड में उद्धृत किया गया है, वे सब अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की कमतर सामाजिक-आर्थिक स्थिति के साक्ष्य उपलब्ध करवाते हैं। उदाहरण के लिए, ऐकारा (1980: तालिका 4.2) ने पाया कि उनके सैम्पल के छात्रों में, गैर-अनुसूचित जातियों के 32 प्रतिशत छात्रों के माता-पिता में से कम से कम एक ने कॉलेज की शिक्षा पाई थी जबकि अनुसूचित जातियों के केवल 5 प्रतिशत छात्रों के माता-पिता में से कम से कम एक ने कॉलेज की शिक्षा पाई थी; अनुसूचित जातियों के 34 प्रतिशत छात्रों के माता और पिता, दोनों ही अनपढ़ थे, गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों के मामले में यह आँकड़ा 11 प्रतिशत था। इसके अलावा, अनुसूचित जातियों के 88 प्रतिशत छात्रों को अध्ययन में सहायता देने के लिए कम से कम आंशिक रूप से तो छूटें मिली हुईं थी और उनमें से केवल 4 प्रतिशत बड़ी हद तक या पूरी तरह से वित्तीय सहायता के लिए रिश्तेदारों या माता-पिता पर

निर्भर थे, जबकि गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए ये आँकड़े क्रमशः 14 और 64 प्रतिशत थे। ऐकारा (1980: तालिका 3) ने इस बात पर भी ध्यान दिया कि अनुसूचित जातियों के छात्रों के कॉलेज छोड़ने का प्राथमिक कारण परीक्षाओं में विफल रहना था; लेकिन इतना ही महत्त्वपूर्ण कारण, खुद को और परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए, रोजगार खोजने की आवश्यकता भी था। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि अनुसूचित जातियों के छात्रों के क्षय (समय-पूर्व शिक्षा त्यागना) और गतिहीनता (एक ही वर्ष-स्तर पर अटकना) की ऊँची दर को कम करने के लिए काफी भारी मात्रा में वित्तीय सहायता आवश्यक होगी।

पुणे में बी.जे. मेडिकल कॉलेज के छात्रों के अपने अध्ययन में, पटवर्धन और पल्शीकर (1992) ने पाया कि सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों के माता-पिता या संरक्षकों में से 40 प्रतिशत पेशेवर थे और केवल 1 प्रतिशत मजदूर थे; उन्हें यह भी पता चला कि सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों में से 53 प्रतिशत ब्राह्मण परिवारों से थे। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के मामले में, केवल 9 प्रतिशत के माता-पिता या संरक्षक पेशेवर थे; क्रमशः 21 प्रतिशत और 17 प्रतिशत मजदूर थे।

सम्भ्रान्त आईआईटी संस्थानों में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के परिवार की पृष्ठभूमि सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक अच्छी थी, फिर भी औसत रूप यह सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों के औसत से काफी कमतर थी। किरपाल और गुप्ता (1999: तालिकाएँ 2.3, 2.4) ने बताया कि उनके सैम्पल में सामान्य प्रविष्टि लेने वाले 54 प्रतिशत छात्रों के पिता उच्च पदों वाले अधिकारी थे और 22 प्रतिशत छात्रों के पिता शिक्षक थे, 66 प्रतिशत छात्रों के पिता स्नातकोत्तर थे या उनके पास पेशेवर डिग्री थी। अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए यही आँकड़े 27 प्रतिशत, 21 प्रतिशत और 34 प्रतिशत थे, और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए 29 प्रतिशत, 10 प्रतिशत और 24 प्रतिशत। किरपाल और गुप्ता (1999: तालिका 2.7) ने यह भी बताया कि सामान्य प्रविष्टि लेने वाले 84 प्रतिशत छात्रों ने अंग्रेजी माध्यम से माध्यमिक शिक्षा पूरी की थी, जबकि अनुसूचित जातियों के 63 प्रतिशत और अनुसूचित जनजातियों के 38 प्रतिशत छात्रों ने अंग्रेजी माध्यम से माध्यमिक शिक्षा पूरी की थी।

मुम्बई के मेडिकल कॉलेजों के अपने अध्ययन में वेलस्कर (1986) ने पुष्टि की कि सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों की तुलना में, अनुसूचित जातियों के छात्र कमतर सामाजिक-आर्थिक

और शैक्षणिक पृष्ठभूमियों से आते हैं; इससे कुछ हद तक समझ में आता है कि उनका प्रदर्शन सामान्य वर्ग में प्रवेश लेने वाले छात्रों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की तुलना में कमतर क्यों रहता है। देखा जाता है कि अनुसूचित जातियों के छात्र बाकी छात्रों की तुलना में, कम गुणवत्ता वाले प्राथमिक और उच्च माध्यमिक स्कूलों में जाते हैं और उनमें से बहुत कम ही उस तरह की ट्यूशन या कोचिंग ले पाते हैं जिससे परीक्षा के लिए बेहतर ढंग से तैयारी करने में अन्य छात्रों को मदद मिलती है। लेकिन बहुत से दूसरे विद्वानों की तरह वेलस्कर ने भी उन बहुत ही थोड़े से अनुसूचित जातियों के छात्रों पर गौर किया है जिनका प्रदर्शन बाकी छात्रों की ही टक्कर का रहता है। कुछ विरले छात्रों को छोड़कर, यह सम्पन्न परिवारों के, अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में पढ़े बच्चे होते हैं।

वेलस्कर कहती हैं कि अनुसूचित जातियों के अधिकांश विद्यार्थियों के अपेक्षाकृत खराब शैक्षणिक प्रदर्शन के अन्तर को उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अन्तर के सन्दर्भ की अपेक्षा उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में बेहतर ढंग से समझाया जा सकता है। अनुसूचित जातियों के छात्रों के परिवार निश्चित रूप से सम्पन्न नहीं हैं, लेकिन अक्सर आने वाली वित्तीय समस्याओं के बावजूद, 1980 के दशक तक उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति सामान्य प्रविष्टि लेने वाले कम सम्पन्न परिवारों के बहुत से छात्रों जैसी ही थी। सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों की तुलना में, अनुसूचित जातियों के छात्रों की सबसे बड़ी कमी 'सांस्कृतिक पूँजी' के मामले में दिखती है। अनुसूचित जातियों के छात्रों की सांस्कृतिक पूँजी की कमी, परिवार के सदस्यों के शिक्षा के कम स्तर, सांस्कृतिक गतिविधियों में भागीदारी के कम होने और आम तौर पर घर के वातावरण के सीखने के लिए कम अनुकूल होने में दिखती है। अधिक गम्भीर रूप से, अनुसूचित जातियों के छात्रों में आधुनिक भारत में सांस्कृतिक पूँजी के सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत, अंग्रेजी भाषा पर अधिकार की कमी होती है।[16] अनुसूचित जातियों के छात्रों के स्तर के ही सामाजिक-आर्थिक स्तर के सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों के अंग्रेजी भाषा पर अधिकार सहित, अधिक बेहतर सांस्कृतिक पूँजी से सम्पन्न होने की सम्भावना काफी अधिक है। ऊँची सामाजिक-आर्थिक स्थिति से अलग एक मजबूत सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का महत्त्व सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों में ब्राह्मणों के अधिक प्रतिनिधित्व से भी पता चलता है। कई ब्राह्मण परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति कमतर है, लेकिन दलित परिवारों की तुलना में कमतर सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले ब्राह्मण परिवार सांस्कृतिक पूँजी से बहुत अधिक समृद्ध हैं।

जैसा कि वेलस्कर बताती हैं, दूसरे छात्र आम तौर पर अनुसूचित जातियों के छात्रों को अपने बराबर लोगों के रूप में स्वीकार नहीं करते – इसका कारण उनकी कमतर सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ ही उनका खराब शैक्षणिक प्रदर्शन भी होता है। किरपाल और गुप्ता (1999: अध्याय 4, 5) ने आईआईटी में ऐसी घटना के काफी साक्ष्य उपलब्ध कराए हैं। सम्पन्न घरों के सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्रों को अक्सर न केवल घर में शिक्षा के लिए अनुकूल वातावरण का लाभ मिला होता है बल्कि उन्हें माध्यमिक शिक्षा में भी स्कूलों में बेहतर गैर-शैक्षणिक सुविधाओं के साथ बेहतर शैक्षणिक वातावरण मिलता है। यह सब उन्हें अपेक्षाकृत आत्मविश्वास से भरी भंगिमा और भाषाई क्षमता देते हैं जो साक्षात्कार और मौखिक परीक्षाओं में महत्त्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव दिखाते हैं। गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों से मिलने वाले तिरस्कार के कारण अनुसूचित जातियों के छात्र काफी सामाजिक अलगाव से गुजरते हैं। उनकी खुद की कमतरी की भावना और उन्हें मिलने वाला तिरस्कार स्थिति को जटिल बना देते हैं। कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जातियों के छात्रों के विरूद्ध सामाजिक भेदभाव भारतीय जीवन का एक तथ्य है। यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि ऐसा मुख्य रूप से जातियों की पहचान के आधार पर होता है या सांस्कृतिक अन्तरों के आधार पर। ऐसी बाधा को दूर करने के लिए अनुसूचित जातियों के छात्रों को मजबूत ढंग से प्रेरित होना और प्रयास करना होगा। इसके अलावा दूसरे छात्रों को भी सहायता और दोस्ती की पहल करके सुविधाजनक वातावरण बनाने में मदद करनी होगी।

परमाजी (1985) ने 1970 और 1980 के दशकों के दौरान आन्ध्र-प्रदेश में कई उच्च शिक्षा संस्थानों में अपने (दूसरों के साथ मिल कर) किए सर्वेक्षण-आधारित शोधों की एक शृंखला पर रिपोर्ट पेश की। 'अगड़ी जातियों', 'पिछड़ी जातियों' और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बीच अन्तर करते हुए उन्होंने पाया कि विभिन्न परीक्षाओं में प्रदर्शन का जातियों की स्थिति से एक सकारात्मक और महत्वपूर्ण अन्तरसम्बन्ध था। वे मानते हैं कि निम्न जातियों के अपेक्षाकृत खराब प्रदर्शन का कारण कमतर सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बजाय सांस्कृतिक वंचन अधिक है क्योंकि उन्होंने पाया कि, समान सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाली जातियों के छात्रों के बीच, 'संस्कृतीकृत' जातियों के लोग दूसरों की तुलना में बेहतर थे। एम.एन. श्रीनिवास (1962) का अनुसरण करते हुए, 'संस्कृतीकरण' शब्द से उनका तात्पर्य निचली जातियों द्वारा ब्राह्मण संस्कृति का अनुकरण है जिसका मतलब है बेहतर भाषाई क्षमताएँ और सांस्कृतिक स्तर प्राप्त कर लेना। दिलचस्प है कि परमाजी को इस बात के भी कुछ प्रमाण मिले कि आवासीय कॉलेज या विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा लेने वाले छात्रों के बीच प्रवेश के

समय से स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी करने तक जातियों की स्थिति का परीक्षा में प्रदर्शन से अन्तरसम्बन्ध उलट जाता है (यह किसी भी स्तर पर प्रदर्शन के पूर्ण स्तर के विपरीत है)। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि शिक्षा के बाद के दौर में, प्रेरक वातावरण निचली जातियों के पहले के सांस्कृतिक अभाव को दूर करने में मदद कर सकता है।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति और शैक्षणिक प्रदर्शन के सम्बन्ध की जाँच करने वाले सभी विद्वान इस बात की पुष्टि करते हैं कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अन्तरसम्बन्ध शिक्षण संस्थानों में अच्छे शैक्षणिक प्रदर्शन से है। यह बात हर प्रमुख श्रेणी के छात्रों (सामान्य प्रवेश, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, आदि) के साथ ही पूरे छात्र वर्ग के लिए भी सच है। लेकिन पटवर्धन और पल्शीकर (1992) ने इस अन्तरसम्बन्ध के एक दिलचस्प रूप का उल्लेख किया है। पुणे में एक प्रमुख मेडिकल कॉलेज के छात्रों के उनके नमूने में, उन्होंने पाया कि परीक्षाओं में, बहुत कमतर सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले (अनपढ़ और/या मजदूर माता-पिता के बच्चे) छात्रों ने एक मध्यवर्ती सामाजिक आर्थिक स्तर (निचले स्तर की सरकारी सेवा, स्कूल में पढ़ाने वाले माता-पिता के बच्चे) के छात्रों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया। इसके समानान्तर, सर्वाधिक सहायता प्राप्त दलित उप-जाति (महार) के छात्रों ने अन्य दलित उप-जातियों के छात्रों जैसा प्रदर्शन नहीं किया। लेखकों ने अनुमान लगाया कि अभी भी निचले स्तरों से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहे परिवारों के छात्रों की तुलना में, सामाजिक-आर्थिक स्तर के निम्नतम स्तरों और जातियों की सीढ़ी से कुछ ऊपर उठ पाए परिवारों के छात्रों में कुछ हद तक आत्मसन्तुष्टि का भाव बन गया हो सकता है (पटवर्धन और पल्शीकर 1992:33-34)।

खण्ड-3. आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों के विश्वविद्यालय के बाद करियर मार्ग के बारे में साक्ष्य

सकारात्मक विभेद की नीतियों के अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेने की सीमा के आकलन के किसी भी प्रयास में लाभार्थियों के दीर्घकालिक करियर मार्गों के साक्ष्य पर विचार करना बेहद महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार के व्यवस्थित साक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल है, क्योंकि इसके लिए पुराने विद्यार्थियों के प्रतिनिधि नमूनों के, कॉलेज या/ विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करने/छोड़ने के बहुत बाद तक की करियर सम्बन्धी जानकारी की जरूरत होती है। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं लेकिन अफसोसनाक है, कि भारत की आरक्षण नीतियों के अनुसूचित जातियों और

अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थियों के मामले में ऐसे व्यवस्थित साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। यहाँ मैं विशिष्ट संस्थानों में उच्च शिक्षा पाने के बाद दलित और आदिवासी छात्रों के करियर की यात्रा को किसी न किसी तरह सम्बोधित करने वाले चार अध्ययनों के निष्कर्षों के बारे में चर्चा करूँगा। [17]

वानखेड़े (1978) ने इस तरह का पहला अध्ययन औरंगाबाद, महाराष्ट्र में मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स (एम.सी.ए.) के छात्रों के एक नमूने पर किया। मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स विशेष रूप से दलितों के लिए स्थापित किया गया भारत का पहला उच्च शिक्षा संस्थान है। यह बी.आर. अम्बेडकर द्वारा स्थापित और उनकी पीपल्स एजुकेशन सोसायटी द्वारा संचालित है। पीपल्स एजुकेशन सोसायटी ने इसी तर्ज पर औरंगाबाद में कई माध्यमिक विद्यालय और कॉलेज (कानून, वाणिज्य, विज्ञान) स्थापित किए। इन संस्थानों में ज्यादातर छात्र और कई अध्यापक दलित हैं। भारत के अधिकांश सरकारी हाईस्कूलों की तुलना में इनके छात्रों को छात्रवृत्ति, विशेष सुविधाएँ और अतिरिक्त ध्यान अधिक आसानी से मिल जाते हैं। मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स के दलित छात्र स्पष्टतः भारतीय आरक्षण नीतियों के तहत उच्च शिक्षा में आरक्षित सीटों के लाभार्थी नहीं हैं। फिर भी उनके अनुभव इन नीतियों के अध्ययन के लिए प्रासंगिक है, क्योंकि वे उन दलित छात्रों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जिनके सरकार द्वारा चलाए जा रहे ज्यादा प्रतिष्ठित उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षित सीटों पर दाखिला पाने की सबसे अधिक सम्भावना होती। वे उस तरह का कण्ट्रोल ग्रुप बन सकते हैं जिसके बरक्स, उच्च शिक्षा में आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों के अनुभवों पर विचार किया जाए।

वानखेड़े का शोध 1972 में बी.ए. की पढ़ाई पूरी करने वाले मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स के छात्रों पर केन्द्रित था। इनमें से अधिकांश छात्र महार (दलितों की उप-जाति), पुरुष, अविवाहित और नव-बौद्ध (1956 में अम्बेडकर के धर्मपरिवर्तन के बाद बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने वाले दलितों को दिया गया नाम) थे।[18] इस बात के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं कि एक ही दल में कितने छात्रों ने बी.ए. पूरा करने से पहले पढ़ाई छोड़ी लेकिन मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स के छात्रों का स्नातक पढ़ाई पूरी करने का रिकॉर्ड अच्छा है, और सम्भव है कि नामांकन करवाने वाले ज्यादातर छात्र अन्ततः स्नातक हो जाते हों।

मिलिन्द कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स से वर्ष 1972 में पढ़ाई पूरी करने वाले सभी 170 स्नातकों को 1970 के दशक के मध्य में प्रश्नावली भेजी गई थी और उनमें से लगभग तीन-चैथाई से

वानखेड़े को प्रतिक्रियाएँ मिलीं। उन्होंने पाया कि लगभग आधे उत्तरदाताओं ने स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा के लिए नामांकन करवाया था और उनमें से लगभग 40 प्रतिशत ने वास्तव में डिग्री भी प्राप्त की। सर्वेक्षण के समय इन स्नातकों में से लगभग एक-तिहाई बेरोजगार थे और 1/6 आगे की पढ़ाई कर रहे थे। बाकी के आधे कम वेतन वाली ऐसी नौकरियाँ कर रहे थे जिनके लिए न्यूनतम योग्यता केवल माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा पूरी करना थी। किसी भी स्नातक के पास ग्रेड 1 या 2 की प्रशासनिक सरकारी नौकरी नहीं थी जबकि इन नौकरियों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण है। बहरहाल, अधिकांश स्नातकों को अपने पिता की तुलना में बेहतर नौकरियाँ मिलीं – जैसे, वे मजदूरी या श्रम के बजाय सेवा-क्षेत्र में थे – और उनकी कमाई अपने पिता से औसत रूप से तीन गुना अधिक थी।

अपने निष्कर्षों से दिख रही सीमित सामाजिक गतिशीलता ने वानखेड़े को निराश किया। माध्यमिक शिक्षा के बाद मिले अनुकूल वातावरण के बावजूद, दलित छात्रों के करियर परम्परागत रूप से खराब पृष्ठभूमि से, वानखेड़े के अनुसार 'वंचित शिक्षित वर्ग' की दिशा में जाते दिखते थे। इसमें कोई शक नहीं कि यह स्थिति बहुत हद तक इसलिए है कि हमारी अर्थव्यवस्था में उच्च स्तर की शिक्षा की माँग करने वाले पदों के लिए पढ़े-लिखे उम्मीदवारों की भरमार होने के कारण भारतीय कॉलेज स्नातकों के लिए नौकरी पाने की सम्भावनाएँ आम तौर पर खराब हैं। लेकिन यह स्थिति बताती है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के लिए आरक्षण के महत्त्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव दिख सकने के लिए शायद उन संस्थानों की आरक्षित सीटों को शामिल करना होगा जिनके स्नातक अच्छी नौकरी में जाने के लिए असामान्य रूप से अच्छी स्थिति में हैं।

ऐसे संस्थानों में वेलस्कर (1986) द्वारा अध्ययन किए गए मुम्बई के वे मेडिकल कॉलेज हैं जिन्हें राष्ट्रीय मानकों के अनुसार काफी अच्छा माना जाता है।[19] जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वेलस्कर ने पाया कि अनुसूचित जातियों के जिन छात्रों ने (आरक्षित सीटों के माध्यम से) इन कॉलेजों में दाखिला लिया, उनमें से अधिकांश ने स्नातक की पढ़ाई पूरी की – हालाँकि उन्हें गैर-अनुसूचित जातियों के छात्रों की तुलना में ऐसा करने के लिए आम तौर पर अधिक वर्ष लगे। उन्होंने स्नातक उत्तीर्ण करने के उपरान्त का व्यवस्थित सर्वेक्षण तो नहीं किया लेकिन निश्चित रूप से जान पाईं कि कुल मिला कर अनुसूचित जातियों के स्नातकों को जिम्मेदारी वाले और बढ़िया तनख्वाहों वाले चिकित्सकीय पद मिले।

वेलस्कर ने अनुसूचित जातियों के छात्रों और उनके गैर-अनुसूचित जातियों के समकक्षों द्वारा विशेषज्ञता के क्षेत्रों के चुनावों और उनके स्नातक उत्तीर्ण करने के उपरान्त करियरों की प्रकृति के बीच कुछ दिलचस्प अन्तर भी पाए। अनुसूचित जातियों के छात्र सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण के विपरीत क्लिीनिकल पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण की ओर अपेक्षाकृत अधिक उन्मुख थे और इनमें उनका प्रदर्शन भी बेहतर रहा। अनुसूचित जातियों के स्नातक अधिकांशतः सामान्य चिकित्सक बने, जबकि गैर-अनुसूचित जातियों के स्नातक अक्सर ही (बहुधा परामर्शदाता) विशेषज्ञ बनते मिले। स्पष्ट रूप से अनुसूचित जातियों के स्नातकों ने गैर-अनुसूचित जातियों के स्नातकों की तुलना में, रोगियों के साथ अच्छे सम्पर्क और सम्बन्ध रखने को, अधिक मूल्य दिया। वेलस्कर ने पाया कि सामान्य तौर पर अनुसूचित जातियों के मेडिकल छात्र (साथ ही कमतर सामाजिक-आर्थिक हैसियत वाले सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्र भी) जरूरतमन्द समुदायों को सेवा प्रदान करने और उन्हें सहायता देने के लिए अधिक प्रेरित थे, जबकि उच्चतर सामाजिक-आर्थिक हैसियत के सामान्य प्रविष्टि लेने वाले छात्र (जो कि अक्सर चिकित्सा/अन्य पेशों से जुड़े परिवारों से थे) करियर की आकांक्षाओं के मामले में अधिक भौतिकतावादी थे।

भारत की उच्च शिक्षा में आरक्षण नीतियों के लाभार्थियों के स्नातक उत्तीर्ण करने के उपरान्त करियर मार्ग को मापांकित करने का सबसे अच्छा और व्यवस्थित प्रयास पटवर्धन और पल्शीकर (1992) ने किया है। इन विद्वानों ने पहले, 1971 और 1982 के बीच पुणे में बी.जे. मेडिकल कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने वाले डॉक्टरों के एक बड़े स्तरीकृत वर्ग को प्रश्नावली भेजी। उन्हें 100 प्रतिक्रियाएँ मिलीं, जिन्हें उन्होंने पूरे नमूने (बड़े समूह की बुनियादी विशेषताओं की उत्तरदाताओं की बुनियादी विशेषताओं से तुलना करते हुए) का सही निरूपणकर्ता पाया। उनके उत्तरदाताओं को इन मुख्य प्रवेश श्रेणियों में वितरित किया गया था – सामान्य प्रविष्टि लेने वाले-26, ओ.बी.सी.-34, अनुसूचित जाति-30, अनुसूचित जनजाति-3, विमुक्त जनजाति (वी.टी.एस.)-7। बाद की चार श्रेणियाँ (जिनसे अधिक नमूने लिए गए) आरक्षित-सीट समूह से हैं जिनसे 74 उत्तरदाता आते थे।

सामान्य प्रविष्टि सीटों और आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले उत्तरदाताओं – विशेष रूप से अन्तिम तीन श्रेणियों में से – को पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर अलग किया गया था। केवल अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टरों में से लगभग 1/8 ही बेहतर सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से थे, जबकि सामान्य प्रविष्टि

सीटों पर प्रवेश लेने वाले बहुत ही कम डॉक्टर निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से थे। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के ज्यादातर डॉक्टरों ने अपनी पढ़ाई को काफी कठिन पाया (खास तौर से मौखिक परीक्षाएँ); और उन्हें लगता था कि उनके शैक्षणिक प्रदर्शन अक्सर अध्यापकों के दुराव और कभी-कभी हिकारत तक जैसे गैर-शैक्षणिक कारणों से खराब हो जाते थे। 100 उत्तरदाताओं के पूरे समूह में से, चार स्नातकोत्तर चिकित्सा डिग्री कार्यक्रम पूरा करने की प्रक्रिया में थे, बाकी में से लगभग एक-तिहाई सरकारी चिकित्सा सेवा में कार्यरत थे और दो-तिहाई निजी प्रैक्टिस कर रहे थे। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टरों की आनुपातिक रूप से अधिक संख्या में सरकारी सेवा में शामिल होने की सम्भावना थी जो आम तौर पर निजी प्रैक्टिस की तुलना में एक अधिक सुरक्षित लेकिन कम कमाई वाली स्थिति होती है। इस स्थिति का कारण आत्मविश्वास, पूँजी व संसाधनों की कमी और जोखिम से बचने की प्रवृत्ति का मेल दिखता है– और कुछ मामलों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टरों के एक हिस्से में इस भावना का होना कि सार्वजनिक क्षेत्र में उन्हें अधिक बेहतर व्यवहार मिल पाएगा (भले ही वे रोजगार में उसकी आरक्षण नीति से लाभान्वित हों या नहीं)।

कुल मिलाकर, तीन सबसे कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के चिकित्सक काफी अच्छी स्थिति में थे, उनमें से लगभग आधे निजी प्रैक्टिस कर रहे थे और आधे सरकारी सेवा में थे, लगभग सभी मामलों में उनकी कमाई का स्तर और सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके सामान्य प्रवेश और ओ.बी.सी. साथियों की तुलना में भले ही कमतर हो लेकिन यह उनके माता-पिता की तुलना में बहुत ऊँचा था। माना जा सकता है कि निजी प्रैक्टिस कर रहे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के अधिकतर चिकित्सक दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में या गरीब शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक रूप से अपने ही समुदायों के ग्राहकवर्ग को सेवा उपलब्ध करवाते होंगे। प्रश्नावली के उत्तरदाताओं के मामले में ऐसा बिलकुल नहीं था। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टर सामान्य प्रविष्टि की सीटों पर प्रवेश लेने वाले और ओ.बी.सी. स्नातकों जैसी बेहतर जगहों पर काम नहीं कर रहे थे, और ऊँची जातियों के रोगी उनके पास कम आते हैं, लेकिन अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टर आम तौर पर विस्तृत और विविधतापूर्ण समुदायों और समूहों को सेवा उपलब्ध करवाते हैं।

पटवर्धन और पल्शीकर (1992) ने अपनी प्रश्नावली के 100 उत्तरदाताओं में से 42 के व्यक्तिगत साक्षात्कार किए जिससे वे अपनी पाँचों प्रवेश श्रेणियों के एक ठीकठाक प्रतिनिधि नमूने के डॉक्टरों की जीवनशैली और विचारों के विस्तृत विवरण उपलब्ध करवा पाए। इन साक्षात्कारों ने उनके इन निष्कर्षों को मजबूत किया कि आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले स्नातकों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के डॉक्टरों ने, सामाजिक-आर्थिक स्तर पर महत्त्वपूर्ण रूप से प्रगति की है, और आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले लगभग सभी स्नातक, डॉक्टरों के रूप में पूरी तरह सक्षम हैं। दरअसल, अध्ययन के लेखक इस व्यापक विश्वास को अस्वीकार करते हैं कि आरक्षित सीटों पर प्रवेश लेने वाले छात्र सक्षम डॉक्टरों के रूप में योग्यता प्राप्त करने और निजी प्रैक्टिस में जमने में असमर्थ हैं। साक्षात्कारों का साक्ष्य स्पष्टता से यह भी दिखाता है कि परिवार की ऊँची सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि सामान्य प्रविष्टि की सीटों पर प्रवेश लेने वाले ज्यादातर और कुछ ओ.बी.सी. छात्रों को पूँजी, सम्पर्क और दूसरी किस्म की सहायता के रूप में महत्त्वपूर्ण लाभ प्रदान करती है जो पेशेवर करियर में उन्नति और सफलता को सुगम बनाते हैं। दूसरी ओर इस बात के भी साक्ष्य हैं कि मेडिकल शिक्षा में स्नातकोत्तर कार्यक्रम पूरा करके सामान्य प्रविष्टि की सीटों पर प्रवेश लेने वाले शीर्ष डॉक्टरों की ही तरह उच्च प्रतिष्ठित पद प्राप्त करने वाले अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और विमुक्त जनजातियों के कुछ सबसे ज्यादा सफल डॉक्टरों के पेशेवर सम्भ्रान्त वर्ग में शामिल होने और अपनी वंचित जातियों या आदिवासी समुदाय से सम्पर्क सीमित कर लेने और उनके सम्भावित नेतृत्व को छोड़ देने की सम्भावना रहती है।

पाँच मुख्य आईआईटी में आरक्षण नीतियों के अपने अध्ययन में किरपाल और गुप्ता (1999) ने उन संस्थानों के स्नातकों से कोई साक्ष्य इकट्ठे नहीं किए। बहरहाल, उन्होंने अपने नमूने में शामिल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के तत्कालीन छात्रों से उनके भविष्य की योजनाओं और करियर लक्ष्यों के बारे में पूछताछ की थी। उनके 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने संकेत दिया कि वे भविष्य में स्नातकोत्तर शैक्षणिक कार्यक्रमों में दाखिला लेने या सरकारी रोजगार (सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों और साथ ही प्रशासनिक सेवाओं) के लिए आवेदन करके आरक्षण का लाभ लेने की योजना बना रहे हैं।[20] करियर लक्ष्यों के व्यवस्थित क्रम में, सबसे अधिक संख्या में छात्रों ने सार्वजनिक उद्यमों (20 प्रतिशत उत्तरदाता) और प्रशासनिक सेवा (20 प्रतिशत उत्तरदाता), मोटे तौर पर 15 प्रतिशत ने निजी क्षेत्र में काम करना, 5 प्रतिशत ने खुद के व्यवसाय की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया; बाकी बचे छात्रों में से लगभग आधे एक ऊँची डिग्री (आमतौर पर विदेशी) पाने पर ध्यान केन्द्रित किए हुए थे। आरक्षण नीति के

लाभार्थियों के अपने समग्र सर्वेक्षण से किरपाल और गुप्ता ने यह निष्कर्ष निकाला: "यह स्पष्ट था कि मुख्य रूप से बेहतर वित्तीय स्थिति और बेहतर करियर विकल्पों में झलकती उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधार कर आरक्षण लाभार्थियों की मदद कर रहे थे। लेकिन ...यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि आत्मविश्वास, स्वीकृति, मुख्यधारा के छात्रों के साथ एकीकरण और अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता के मायनों में आन्तरिक विकास आम तौर पर नहीं दिखता।" (किरपाल और गुप्ता 1999: 156-57)।

खण्ड-4. निष्कर्ष

उच्च शिक्षा के सभी स्तरों पर आरक्षण की नीतियाँ अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को विश्वविद्यालय की गुणवत्ता के पदानुक्रम में पुनर्वितरित भी करती हैं और बड़ी संख्या में ऐसे छात्रों को विश्वविद्यालय की ओर आकर्षित भी करती हैं जो अन्यथा उच्च शिक्षा न लेते। मेरा बहुत मोटा सा अनुमान है कि आरक्षण की नीतियों ने 1990 के दशक के उत्तरार्ध में भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे 7,00,000 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों में से लगभग आधों को, या तो औसत दर्जे के विश्वविद्यालय में नामांकन करवाने के बजाय अपेक्षाकृत अधिक वांछनीय संस्थान या पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने या फिर उच्च शिक्षा लेने की सम्भावना को पूरी तरह छोड़ देने के बजाय विश्वविद्यालय में नामांकन करवाने में सक्षम बनाया। आरक्षण की नीतियों के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकांश लाभार्थी, दूसरे वर्गों के अपने साथियों की तुलना में, खराब तैयारी और कमतर शैक्षणिक योग्यता के साथ विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते हैं और आश्चर्य नहीं कि पढ़ाई में भी उनका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहता। लेकिन पिछले कुछ दशकों से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के और अन्य छात्रों के बीच प्रवेश-परीक्षा के अंकों का अन्तर कम होते जाने के साक्ष्य उपलब्ध हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विश्वविद्यालय में प्रवेश में भारत की आरक्षण नीतियों के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकांश लाभार्थी, वास्तव में दलित और आदिवासियों की 'मलाईदार परत' से आते हैं; उच्च शिक्षा पाने के लिए स्कूल में बने रहने के किसी भी प्रयास में गरीबों के सामने आने वाली बाधाओं के चलते यह होना ही था। इस बात के भी बहुत से साक्ष्य हैं कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति श्रेणियों के भीतर बेहतर स्थिति वाली जातियों और जनजातियों से गैर-आनुपतिक रूप से अधिक संख्या में लाभार्थी आते हैं।

इस प्रकार आरक्षण नीतियों का सीधा प्रभाव यह है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समूहों के भीतर असमानताएँ बढ़ी हैं। बहरहाल, उपलब्ध साक्ष्य यह भी इंगित करते हैं कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की औसत सामाजिक-आर्थिक स्थिति अन्य छात्रों की तुलना में काफी नीची है। इस प्रकार आरक्षण नीतियों के बाकी वर्गों की गरीब आबादी के आवेदकों की कीमत पर समर्थ दलितों और आदिवासियों को लाभान्वित करने की बहुत ही कम सम्भावना है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों का औसत शैक्षिक प्रदर्शन और स्नातक दर अन्य छात्रों की तुलना में काफी बदतर हैं। उनमें से अधिकांश की अपेक्षाकृत कमजोर शैक्षिक पृष्ठभूमि और किसी डिग्री कार्यक्रम को पूरा करने में उनके सामने आने वाली विभिन्न बाधाओं के मद्देनजर यह आश्चर्यजनक नहीं है। लेकिन लगता है कि भारत के सम्भ्रान्त उच्च शिक्षा संस्थानों में, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और अन्य वर्गों के छात्रों के स्नातक पाठ्यक्रम पूरा करने की दर में अन्तर बहुत अधिक नहीं है। कुछ अपेक्षाकृत चुनिन्दा संस्थानों से इस बात के भी कुछ साक्ष्य मिलते हैं कि समय के साथ-साथ अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के स्नातक पाठ्यक्रम पूरा करने की दर सुधर रही है क्योंकि उनकी प्रवेश के समय की योग्यताएँ बढ़ी हैं और खुद संस्थानों ने भी शैक्षिक वातावरण में सुधार के तरीके ढूँढे हैं।

भारतीय उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश लेने वाले छात्रों के समूहों के विश्वविद्यालय के बाद करियरों का पता लगाने का प्रयास बहुत कम अध्ययनों में हुआ है। वास्तव में तो, इस सन्दर्भ में किए गए गिनेचुने अध्ययनों से पता चलता है कि अपेक्षाकृत अभिजात संस्थानों से स्नातक की पढ़ाई पूरी करने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र जिम्मेदार और अच्छे वेतन वाले पदों पर काम करते हैं और अपने माता-पिता की तुलना में ऊँचा सामाजिक-आर्थिक स्तर पा लेते हैं, अलबत्ता सामान्य प्रविष्टि लेने वाले और ओ.बी.सी. के उनके साथियों की तुलना में यह स्तर कमतर होता है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और गैर-अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के बीच विश्वविद्यालय के बाद करियर की उपलब्धियों में अन्तर, पारम्परिक रूप से विश्वविद्यालय के अध्ययन में शैक्षणिक प्रदर्शन के मापन की तुलना में काफी कम प्रतीत होता है। इससे पता चलता है कि याः (1) विश्वविद्यालय के भीतर के पारम्परिक प्रदर्शन मापक उच्च शिक्षा से इन विद्यार्थियों को वास्तव में हो रही प्राप्ति को कम बताते हैं, या (2) विश्वविद्यालय के अध्ययन के बाद

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र आगे प्रगति करके बाकी वर्गों के अपने साथियों की बराबरी पर पहुँच जाते हैं।

सकारात्मक विभेद की नीतियों के कुछ आलोचकों का दावा है कि लाभार्थियों को जिन कार्यक्रमों में तरजीही प्रवेश मिलता है उनमें उनका प्रदर्शन इतना खराब रहता है कि असल में तो ऐसी तरजीह के बिना वे बेहतर स्थिति में रहते। आरक्षण नीतियों के न होने पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और दूसरे वर्गों के लाभार्थी छात्रों की करियर उपलब्धियों और आरक्षण नीतियों के चलते इन लाभार्थियों की करियर उपलब्धियों के बीच अन्तर के तरीके का कोई परिष्कृत अध्ययन उपलब्ध नहीं है। बहरहाल, थोड़े से उपलब्ध प्रमाण बताते हैं कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र अधिक अभिजात उच्च शिक्षा संस्थानों (भले ही उनके साथियों की तुलना में उनके शैक्षणिक प्रदर्शन कमजोर रहते हैं) से उचित अनुपात में स्नातक की शिक्षा पूरी करते हैं। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्यादातर स्नातकों के सफल करियर हैं। यह साक्ष्य, और यह निर्विवाद तथ्य कि एक औसत संस्थान की डिग्री की तुलना में एक सम्भ्रान्त संस्थान की डिग्री, एक अच्छे करियर की अधिक सम्भावना जगाती है, बताते हैं कि यह बिलकुल भी सम्भव नहीं है कि सम्भ्रान्त संस्थानों में आरक्षित सीटें न होतीं तो उनमें पढ़ रहे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र बेहतर स्थिति में रहते।

उच्चतर शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए आरक्षण की नीतियों के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों की एक मलाईदार परत को ही लाभ देने के तथ्य को अक्सर आरक्षण नीतियों के आलोचक इस बात के प्रथम दृष्ट्या साक्ष्य के रूप में लेते हैं कि ये नीतियाँ अपने उद्देश्य में असफल हो रही हैं। लेकिन अगर इन नीतियों का प्राथमिक उद्देश्य, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के समुदायों के भीतर शैक्षणिक अवसरों के वितरण में सुधार करना होता तो यह निष्कर्ष ठीक ही रहता। लेकिन जाहिर है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षण नीतियाँ इस उद्देश्य को बढ़ावा देने का सही तरीका नहीं हैं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के समुदायों के भीतर शैक्षणिक अवसरों के वितरण में सुधार करने का एक बहुत ज्यादा सम्भावनापूर्ण तरीका, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के समुदायों की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच में और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की भर्ती की सबसे अधिक सम्भावना वाले स्कूलों की गुणवत्ता में सुधार करना होगा।

उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश में सकारात्मक विभेद की नीतियों को अभिजात व्यवसायों और निर्णय लेने वाले पदों तक अत्यधिक वंचित समुदायों और निम्न-प्रतिनिधित्व वाले समुदायों के सदस्यों की पहुँच बढ़ा कर समाज के ऊपरी वर्ग के एकीकरण को बढ़ावा देने के एक प्रयास के रूप में समझा जाना चाहिए।[21] समाज के अभिजात वर्ग का इस तरह का एकीकरण विभिन्न प्रकार के लाभों की आशा जगाता है जिनमें राजनीतिक व्यवस्था की वैधता बढ़ना, वंचित समुदायों की समझ और जानकारी वाली नौकरियों के बेहतर प्रदर्शन; अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के साधारण सदस्यों के लिए संसाधनों और नौकरियों के अधिक समान अवसर, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के युवाओं के लिए अपने भविष्य की सम्भावनाओं को बेहतर बनाने के लिए बेहतर प्रेरणा शामिल हैं। इस परिप्रेक्ष्य से, उच्च शिक्षा में प्रवेश में आरक्षण की नीतियों की सफलता के परिमाण को मापने में यह प्रश्न पूछना महत्त्वपूर्ण है कि क्या अपेक्षाकृत सम्भ्रान्त संस्थानों में पढ़ने वाले लाभार्थी अपने डिग्री कार्यक्रम को पूरा करने और करियरों में आगे बढ़ने में सफल होते हैं। इस प्रश्न पर उपलब्ध बहुत सीमित प्रमाण से पता चलता है कि भारत में सम्भ्रान्त उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकित अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकतर छात्र वाकई सफल करियर पाते हैं – निश्चित रूप से, आरक्षण न होता तो उनके करियर इतने सफल न होते।[22]

आरक्षण की नीति के लाभार्थियों के विश्वविद्यालय के बाद के करियर के बारे में ठोस साक्ष्य की कमी इस विषय पर अधिक शोध की आवश्यकता की ओर इंगित करती है। पलशीकर और पटवर्धन (1992) द्वारा किए गए अध्ययनों जैसे उच्च शिक्षा में आरक्षण की नीतियों के दीर्घकालिक परिणामों के कई और व्यवस्थित अनुभवजन्य अध्ययन जरूरी हैं। मुझे आशा है भविष्य में ऐसे कई और अध्ययन किए जाएँगे।[23]

•

टिप्पणियाँ

(इस लेख की अधिकांश सामग्री मेरी हाल ही में प्रकाशित किताब *अफ़र्मेटिव एक्शन इन द यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड इण्डिया: अ कम्पैरेटिव पर्सपैक्टिव, रूटलेज, लण्डन, 2004*, खास कर अध्याय 10 और 12 से ली गई है।)

1. इस लेख में प्रस्तुत भारत की आरक्षण की नीतियों के परिणामों पर अधिकांश अनुभवजन्य साक्ष्यों में केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र शामिल हैं। ओ.बी.सी. के मामले में इस

तरह के साक्ष्यों को पेश करने के लिए राज्यवार विस्तृत जाँच करने की आवश्यकता होगी क्योंकि भारत के विभिन्न राज्यों में ओ.बी.सी. की स्थिति व्यापक रूप से भिन्न है।

2. छात्र नामांकन के आँकड़े, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की वार्षिक रिपोर्ट में प्रस्तुत किए गए हैं।
3. भारतीय जनगणना के आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, कुल आबादी में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अंश 1981 में क्रमशः 15.5 प्रतिशत और 7.8 प्रतिशत थे; और 1991 में ये 16.5 प्रतिशत और 8.1 प्रतिशत थे।
4. इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय उच्च शैक्षणिक संस्थानों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पंजीकरण के डाटा शायद कुछ हद तक अतिरंजित हैं, क्योंकि गैर-अनुसूचित जातियों और गैर-अनुसूचित जनजातियों के कुछ आवेदक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का होने का दावा करके संस्थानों में आरक्षित सीटों के माध्यम से प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण के लिए देखें, वेलस्कर (1986: 600-01) और पटवर्धन और पलशीकर (1992: 24)।
5. 1961 से हर दस बरस में होने वाली भारतीय जनगणना में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की (और साथ ही बाकी की आबादी की भी) शैक्षणिक उपलब्धियों पर विस्तृत आँकड़े जमा किए गए हैं, लेकिन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के आँकड़े केवल 1961, 1971 और 1981 के लिए ही उपलब्ध करवाए गए हैं। 1961 की जनगणना के मामले में, उच्च शैक्षिक संस्थानों के स्नातकों के आँकड़े केवल शहरी क्षेत्रों के लिए ही उपलब्ध हैं। मैंने कुल मिलाकर 1961 के आँकड़े का अनुमान, 1961 के शहरी आँकड़ों को शहरी स्नातकों के कुल 1971 के अनुपात से गुणा करके लगाया।
6. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों के नियम के कुछ अपवादों में 'स्नातकोत्तर' (स्नातक-स्तर) अध्ययन के केन्द्र-नियन्त्रित संस्थान हैं जिन्हें विशेष छूट प्राप्त हुई है, जैसे कि अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली और नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवान्स स्टडीज़, बैंगलोर। अनुसूचित जाति की आरक्षित सीटों का प्रतिशत शुरू से ही 15 प्रतिशत रहा है, अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत शुरू में 5 प्रतिशत पर सेट किया गया था लेकिन फिर 1982 में बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गया।
7. सिद्धान्त रूप से, सामान्य प्रविष्टि छात्र के रूप में दाखिला लेने के लिए अच्छे अंक प्राप्त करने वाले एस.सी. और एसटी (साथ ही ओ.बी.सी.) आवेदकों को आरक्षित सीटों के कोटे में डालने के बजाय इस वर्ग में डाला जा सकता है। लेकिन व्यवहार में, ऐसे ज्यादा अंक लाने वाले छात्रों को अक्सर अपने वर्ग के लिए आरक्षित सीटों पर दाखिला दिया जाता है। इसका अर्थ है कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के और ओ.बी.सी. छात्रों के दाखिले के कुल आँकड़े वास्तव में आरक्षण के आधार पर दाखिला पाने वाले छात्रों की संख्या बढ़ा कर बताते हैं।
8. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा महाराष्ट्र में दलितों की पढ़ाई को सुचारू रूप से चलाने के लिए बनाई गई पीपल्स एजुकेशन सोसायटी द्वारा चलाए जाने वाले कॉलेजों जैसे विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाए गए शिक्षण संस्थानों की भूमिका पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यद्यपि ऐसे स्कूल सचमुच बहुत ही सकारात्मक रूप से कुछ क्षेत्रों में असमर्थ

छात्रों के लिए मौजूदा शैक्षणिक अवसरों को संख्यात्मक और गुणात्मक रूप से बढ़ा रहे हैं, किन्तु अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में इस तरह के उच्च शिक्षण संस्थान कम ही हैं।

9. लम्बे समय से चले आ रहे पाँच आईआईटी मुम्बई, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर और चैन्नई थे। 1990 के दशक के मध्य में एक नया आईआईटी गुवाहटी में खुला।
10. ये अनुपात, राव (2002: तालिका 2) द्वारा इकट्ठे किए गए आँकड़ों पर आधारित हैं।
11. राव (2002: 56) ने एक उदाहरण के तौर पर, आन्ध्र-प्रदेश में दो प्रमुख दलित जातियों – माला और मडिगा – के मामले की चर्चा की। माला खेत मजदूरी करते हैं और खुद को जानवरों की खाल का काम करने वाले मडिगा से ऊँचा मानते हैं। मडिगाओं की तुलना में, माला लोगों के लिए स्कूल जाना हमेशा ही आसान रहा और अब उच्च शिक्षा में आरक्षित सीटों के बड़े हिस्से पर उनका कब्जा है।
12. यह परिकल्पना लेखक को वेलास्कर द्वारा 24 जनवरी, 2002 को एक ईमेल द्वारा बताई गई थी।
13. पटवर्धन और पलशीकर के नमूनों में, परीक्षाओं में विमुक्त जनजातियों के छात्रों के परिणाम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की अपेक्षा अधिक अच्छे थे, लेकिन उनका पढ़ाई अधूरी छोड़ने का प्रतिशत ज्यादा था।
14. किरपाल और गुप्ता (1999) के अनुसार, हर बरस लगभग 80,000 आवेदकों में से, सिर्फ 2,250 छात्रों (जिसमें 100 से कम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्र शामिल रहते हैं) को दाखिला मिलता है – दाखिले का अनुपात 2.8 है।
15. किरपाल और गुप्ता के आँकड़े दिखाते हैं कि, सभी आईआईटी में से, आईआईटी, खड़गपुर में ही अधिक अनुपात में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों के नामांकन होते हैं, और यहीं से अन्य मुख्य चार आईआईटी की अपेक्षा इस वर्ग के सबसे अधिक अनुपात में स्नातक निकलते हैं। अतः, लेख में प्रस्तुत कुल आँकड़े सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित आईआईटी मुम्बई, दिल्ली, कानपुर और चैन्नई के अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के छात्रों की सफलता को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं।
16. भारतीय शैक्षिक प्रणाली में असमानता में अंग्रेजी की भूमिका के एक बहुत ही उपयोगी निष्कर्ष के लिए देखें कुमार (1997)।
17. मुझे केवल इन्हीं अध्ययनों के बारे में पता है।
18. वानखेड़े ने ध्यान दिया कि हिन्दू अनुसूचित जातियों के लिये निर्धारित सरकार द्वारा वित्त-पोषित विशेष सुविधाएँ (जैसे कि हॉस्टल) प्राप्त करने के लिये बौद्ध छात्र भी हिन्दू होने का दावा करते हैं।
19. जैसा कि लेखक को वेलास्कर द्वारा 24 जनवरी, 2002 को एक ईमेल द्वारा बताया गया।
20. उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश में आरक्षण के बहुत से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थियों के स्नातकोत्तर अध्ययन या सार्वजनिक रोजगार अवसरों में अतिरिक्त आरक्षण से लाभान्वित होने का मतलब है कि करियर सम्बन्धी उनकी उपलब्धियाँ आरक्षण तक उनकी शुरूआती पहुँच के प्रभाव को कुछ अतिरंजित रूप से प्रस्तुत करती हैं। हालाँकि जब ऐसा हो तब भी हमें यह समझना चाहिए कि आरक्षण के कारण सम्भव हुए उच्च अध्ययन या नौकरियों में सफल रहने की ऐसे व्यक्तियों की क्षमता इस तथ्य के कारण हो सकती है कि उन्होंने पहले ऐसे उच्च शिक्षा संस्थानों तक पहुँच पाई जो उन्हें आवश्यक तैयारी और प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।
21. सकारात्मक विभेद की नीतियों के उद्देश्य की यह समझ सबसे ज्यादा एलिज़ाबेथ एण्डरसन (2000, 2002) ने अपने लेखों में व्यक्त की है।

22. यह निष्कर्ष भारत में आरक्षण नीतियों के अन्य विद्वानों द्वारा समर्थित है। इस प्रकार, भारत में एक कानूनी परिप्रेक्ष्य से आरक्षण नीतियों के सबसे व्यापक अध्ययन के लेखक गैलण्टर ने लिखा है: '... प्रतिपूरक विभेद एक आंशिक और महँगी सफलता है। हालाँकि कुछ प्रत्यक्ष लाभ, गाँवों में भूमिहीन मजदूरों की विशाल संख्या तक पहुँचे हैं लेकिन निःसन्देह प्रतिपूरक विभेद के कारण इन (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) समूहों में एक मध्यम वर्ग के विकास में तेजी आई जो शहरी, शिक्षित और मुख्यतः सरकारी सेवा में है। जिस हद तक इन समूहों के सदस्यों को समाज में केन्द्रीय भूमिकाओं में लाया गया है, उसकी कुछ साल पहले तक कल्पना भी नहीं की जा सकती थी...' (गैलण्टर 1984: 551)। गैलण्टर के लेखन के बहुत बाद में, हाल ही में समाजविज्ञानी मेंडेलसॅन और विसियानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे: "कई हजार अछूत लोगों को वास्तव में महत्त्वपूर्ण लाभ प्रदान किए गए हैं, और सार्वजनिक रोजगार और उच्च शिक्षा संस्थानों में काफी हद तक अनुचित भेदभाव पर विजय पाई गई है। इसके अलावा, व्यापक अछूत आबादी के लिए बेहतरी हेतु बदलाव के कारक के रूप में, काफी बड़ी संख्या में निपुण और पेशेवर अनुभव रखने वाले अछूतों की, अनदेखी नहीं की जा सकती।" (मेंडेलसॅन और विसियानी 1998: 146)।
23. आईआईटी-मुम्बई के दो समाजविज्ञानियों के साथ, मैंने 2001 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और (एक नियन्त्रित समूह) अन्य आईआईटी स्नातकों के करियर पथों का एक व्यवस्थित अध्ययन आरम्भ करने का प्रयास किया। लेकिन दुखद है कि अनुसंधान के हमारे प्रस्ताव को अन्ततः सम्बन्धित प्राधिकारियों ने अनुमोदित नहीं किया – इसका सबसे बड़ा कारण शायद विषय की राजनीतिक सम्वेदनशीलता रहा हो।

सन्दर्भ

ऐकारा, जे. (1980): 'शैड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड हायर एजुकेशन: ए स्टडी ऑफ़ कॉलेज स्टूडैण्ट्स इन मुम्बई', दास्ताने, पुणे.

एण्डरसन, ई. (2000): 'फ़्रॉम नार्मेटिव टु एम्पिरिकल सोशियोलॉजी इन द अफ़र्मेटिव एक्शन डिबेट: बोवेन एण्ड बॉक 'द शेप ऑफ़ द रिवर',' *जर्नल ऑफ़ लीगल एजुकेशन*, 50, पृ. 284-305.

-(2002): 'इण्टिग्रेशन, अफ़र्मेटिव एक्शन एण्ड स्ट्रिक्ट स्क्रूटिनी', *न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी लॉ रिव्यू*, 77, पृ. 1195-1271.

चानना, के. (1993): 'एक्सेसिंग हायर एजुकेशन – द डाइलेमा ऑफ़ स्कूलिंग: विमन, माइनॉरिटीज़, शैड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शैड्यूल्ड ट्राइब्स इन कण्टैम्परेरी इण्डिया' एस. चिटणीस और पी. एल्टबाख (एडिटर्स) *हायर एजुकेशन रिफ़ॉर्म इन इण्डिया*, सेज पब्लिकेशन्स, न्यू डेल्ही, इण्डिया.

चिटणीस, एस. (1981): अ लॉन्ग वे टु गो: रिपोर्ट ऑन अ सर्वे ऑफ़ शैड्यूल्ड कास्ट हाईस्कूल एण्ड कॉलेज स्टूडैण्ट्स इन फ़िफ़्टीन स्टेट्स ऑफ इण्डिया, एलाइड, न्यू डेल्ही.

-(1986): 'मेज़रिंग अप टु रिज़र्व्ड एडमिशन्स' वी.पी. शाह एण्ड बी.सी. अग्रवाल (एडिटर्स), *रिज़र्वेशनः पॉलिसी, प्रोग्राम्स एण्ड इश्यूज़*, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर.

गैलण्टर, एम. (1984): *कम्पीटिंग इक्वालिटीज़ः लॉ एण्ड द बैकवर्ड क्लासेज़ इन इण्डिया*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, डेल्ही.

हेनरिक, जे. एण्ड जे.जे. वानखेड़े (1985): *वन स्टैप फ़ॉरवर्ड, यट टू स्टैप्स बिहाइण्ड: ए स्टडी ऑफ़ वेस्टेज एण्ड स्टैगनेशन इन एजुकेशन ऑफ़ एस.सी.-एसटी इन महाराष्ट्र*, रिपोर्ट सबमिटेड टु मिनिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन, गवर्नमैण्ट ऑफ़ इण्डिया, न्यू डेल्ही.

एच.आर.डी. (1997): *सलैक्टेड एजुकेशनल स्टैटिस्टिक्स, 1996-97*, मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्सेज़ डवलपमैण्ट, गवर्नमैण्ट ऑफ़ इण्डिया, न्यू डेल्ही.

कार्लेकर, एम. (1975): 'हायर एजुकेशन एण्ड द शैड्यूल्ड कास्ट्स', *जर्नल ऑफ़ हायर एजुकेशन*, 1, पृ. 178-87.

किरपाल, वी. (1978): 'हायर एजुकेशन फ़ॉर द शैड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड शैड्यूल्ड ट्राइब्स', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, वॉल्यूम 13, पृ. 165-69.

किरपाल, वी. एण्ड एम. गुप्ता (1999): *इक्वालिटी थ्रू रिज़र्वेशन्स*, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर.

किरपाल, वी., एन. स्वामिनाथन, ए. गुप्ता एण्ड आर.के. गुप्ता (1985ए): 'शैड्यूल्ड कास्ट एण्ड शैड्यूल्ड ट्राइब स्टूडैण्ट्स इन हायर एजुकेशनः अ स्टडी ऑफ़ एन आईआईटी', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, 20: 1238-48.

-(1985बी): 'वेस्टेज अमंग शैड्यूल्ड कास्ट एण्ड शैड्यूल्ड ट्राइब स्टूडैण्ट्स', *जर्नल ऑफ़ हायर एजुकेशन*, 11: 111-16.

कुमार, के. (1997): 'एजुकेशनल इनइक्वालिटी एण्ड लैंग्वेज' इन आर.पी. सिन्हा (एड.), *इनइक्वालिटी इन इण्डियन एजुकेशन*, विकास पब्लिशिंग हाउस, न्यू डेल्ही.

मैण्डलसहन, ओ. एण्ड एम. विक्ज़ाएनि (1998): *द अनटचेबल्सः सबऑर्डीनेशन, पावर्टी एण्ड द स्टेट इन मॉर्डन इण्डिया*, कम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, कम्ब्रिज, यू.के.

परमाजी (1985): *कास्ट रिज़र्वेशन्स एण्ड परफॉर्मेंसः रिसर्च फ़ाइण्डिंग्स*, ममता पब्लिकेशन्स, वारंगल, आन्ध्र-प्रदेश.

पटवर्धन, वी. एण्ड वी. पल्शीकर (1992): 'रिज़र्व्ड सीट्स इन मेडिकल एजुकेशनः ए स्टडी', *जर्नल ऑफ़ एजुकेशन एण्ड सोशल चेंज*, 5: 1-117.

राव, एस.एस. (2001): *इक्वालिटी इन हायर एजुकेशन: इम्पैक्ट ऑफ़ अफ़र्मेटिव एक्शन पॉलिसीज़ इन इण्डिया*, अनपब्लिश्ड ड्राफ़्ट पेपर, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, न्यू डेल्ही.

-(2002): 'इक्वालिटी इन हायर एजुकेशन: इम्पैक्ट ऑफ़ अफ़र्मेटिव एक्शन पॉलिसीज़ इन इण्डिया', इन ई.एफ. बैकहम (एड.), *ग्लोबल कोलैबरेशन्स: द रोल ऑफ़ हायर एजुकेशन इन डायवर्स डैमोक्रेसीज़*, असोसिएशन ऑफ़ अमेरिकन कॉलेजेज़ एण्ड यूनिवर्सिटीज़, वॉशिंगटन, डीसी.

सच्चिदानन्द (1977): *द हरिजन इलीट*, थॉमसन प्रैस, न्यू डेल्ही.

श्रीनिवास, एम.एन. (1962): *कास्ट्स इन मॉर्डन इण्डिया*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई.

वकील, ए.के. (1985): *रिज़र्वेशन पॉलिसीज़ एण्ड शैड्यूल्ड कास्ट्स इन इण्डिया*, आशीष पब्लिशिंग हाउस, न्यू डेल्ही.

वेलस्कर, पी.आर. (1986): 'इनइक्वालिटी इन हायर एजुकेशनः अ स्टडी ऑफ़ शैड्यूल्ड कास्ट स्टूडैण्ट्स इन मेडिकल कॉलेजेज़ ऑफ़ बॉम्बे', अनपब्लिश्ड पी.एचडी. डिसरटेशन, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ सोशल साइन्सेस, मुम्बई.

वानखेड़े, जी.जी, (1978): 'सोशल डिटरमिनैण्ट्स ऑफ़ ऑक्युपेशनल मोबिलिटीः अ केस स्टडी ऑफ़ शैड्यूल्ड कास्ट्स इन महाराष्ट्र', अनपब्लिश्ड एम.फ़िल. डिसरटेशन, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, न्यू डेल्ही.

व्हाइसकॉफ़, थॉमस (2001): 'द कॉन्सीक्वैन्सेज़ ऑफ़ अफ़र्मेटिव एक्शन इन यू.एस. एजुकेशनः अ रिव्यू ऑफ़ रीसैण्ट एम्पिरिकल स्टडीज़', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, वॉल्यूम 36, नं. 51, डिसैम्बर 22, पृ. 4719-34.

###